ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-11* December- 2020
Innovation The Research Concept

जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था : संरचना एवं स्वरूप (1453 से 1818 ईस्वी)

Jodhpur State Military System: Structure and Format (1453 to 1818)

Paper Submission: 15/12/2020, Date of Acceptance: 26/12/2020, Date of Publication: 27/12/2020

महेश कुमार दायमा
सहायक आचार्य,
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

राव जोधा द्वारा स्थापित भाई–बंट की जागीर व्यवस्था ही, जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था का आधारभूत स्तंभ थी। जोधपुर राज्य के सैन्य संगठन का आधार राज्य के छोटे–बड़े सभी जागीरदार (पट्टेदार) होते थे। प्रत्येक जागीरदार जागीर के बदले में निश्चित संख्या में सैनिक रखते थे और आवश्यकता पड़ने पर राज्य की सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। जागीर के अनुसार ही जागीरदारों को घुड़सवार व शुतुर सवार रखने होते थे। प्रायः जागीर का वितरण शासक अपने ही वंश के लोगों में करता था। इसके साथ ही उनके साथ वैवाहिक संबंधों अथवा अन्य कारणों से भी गैर राठौड़ वंशीय राजपूतों को भी जागीरें (पट्टा) प्रदान की जाती थी। सामान्यतः राजा सामन्तों को जागीरे देने में वंशानुगत परम्परा को निभाता था। पट्टा प्रदान करते समय प्रत्येक सामन्त के पट्टे में सामन्त को सैनिक अथवा असैनिक किस प्रकार की सेवा करनी होगी, उल्लेख होता था। सैनिक सेवा ही महत्त्वपूर्ण थी। मुगलकाल में राठौड़ राजा मोटाराजा उदयसिंह, मुगल मनसबदार हो गये थे। अतः जोधपुर राजाओं को मुगल बादशाह की सेवा में रहकर उनके आदेशानुसार विभिन्न युद्धाभियानों में जाना पड़ता था। सामन्त ही शासक की सैनिक शक्ति के मेरूदण्ड थे। सामन्त राज्य की रीढ़ की हड्डी थे। राज्य की सुरक्ष का दायित्व सामन्तों पर रहता था। सीमाओं की सुरक्षा और शासक की अनुपस्थिति में राजधानी व गढ़ की देखभाल व सुरक्षा का कार्यभार के लिए सामन्तों की नियुक्ति की जाती थी। अतः उन्हें भी राठौड़ शासक के साथ रहकर यत्र–तत्र जाना पड़ता था। मुगल मनसब प्राप्त राठौड़ राजा के उत्तराधिकारी का अंतिम निर्णय मुगल बादशाह स्वयं करता था। अतः मुगल आधिपत्य स्थापना के बाद इस संदर्भ में भी सामन्तों का महत्त्व और शक्ति बहुत कम हो गयी थी। जोधपुर राज्य के प्रत्येक परगने में भी राज्य की ओर से निश्चित सेना रखी जाती थी। उक्त सेना का मूल कार्य परगनों में शांति व व्यवस्था बनाये रखना था, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर सैनिक अभियानों में भी उक्त सेना का उपयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त शासक के सीधे नियंत्रण में राज्य की अपनी अलग सेना भी रहती थी। यह सेना जोधपुर में ही रहती थी। राज्य की इस सेना में घुड़सवार, हस्तिसेना, शुतुर सवार अर्थात् ओठी, तोपची व पैदल सेना होती थी। सैन्य व्यवस्था का सम्पूर्ण दायित्व बख्शी का होता था। केन्द्रीय स्थाई सेना को नगद भुगतान किया जाता था। मुगल प्रभाव से जोधपुर की सैन्य व्यवस्था पट्टेदारी पर आधारित थी, जिसका आधार 'रेख' को बनाया गया था। जोधपुर राज्य की प्रारंभ में सामन्तीय व्यवस्था कालान्तर में पट्टेदारी व्यवस्था ही सैनिक शक्ति व व्यवस्था का मुख्य आधार स्तंभ बन गयी। जोधपुर राज्य द्वारा सैनिक दृष्टिकोण से सामन्तों पर अत्यधिक निर्भरता ने भी कालान्तरण में जाकर राज्य को नुकसान हुआ, सामन्तों पर नियंत्रण रखने के लिए राजा के पास स्थायी सेना के अभाव में हमेशा राज्य के आंतरिक व बाह्य मामलों व उत्तराधिकारी जैसे निर्णय भी सामन्तों की सलाह व सहमति से सम्पन्न होने लगे। राठौड़ों की भाई–बंट सैनिक पद्धति ने प्रारम्भ में साम्राज्य विस्तार में संजीवनी का कार्य किया, सभी सामन्त स्वयं को राज्यहित के लिए बलिदान देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे, लेकिन मुगल प्रभाव से सैन्य व्यवस्था को रूपान्तरित कर पट्टेदारी में बदल दिया, तब सामन्त की निष्ठा राज्य के प्रति कम हो गई और वे लगातार नवीन पट्टा प्राप्त करने में लगे रहे। उस अनुपात में सेना में नवीकरण नहीं किया तथा पट्टे की शर्तों के अनुसार किसी भी पट्टेदारों ने सैन्य व्यवस्था का समुचित प्रबंध नहीं किया जो कालान्तर में जाकर मराठा आक्रमण के समय घातक सिद्ध हुआ।

The jagir system of fraternity established by Rao Jodha was the basic pillar of the military system of Jodhpur state. The base of the military organization of Jodhpur State was all the Jagirdars (lessee) of the state. Each jagirdar used to keep a fixed number of soldiers in exchange for the jagir and was always ready to serve the state when needed. According to Jagir, the Jagirdars had to keep horsemen and ostrich riders. Often the ruler distributed the manor to the people of his own dynasty. Along with this, Jagirs (pattas) were also provided to non-Rathod dynasty Rajputs due to marital relations with them or for other reasons. Generally, the king used to play hereditary tradition in giving feudal lords. At the time of granting the lease, it was mentioned in the lease of each feudal what kind of service a soldier or civilian would have to do. Military service itself was important. During the Mughal era, Rathore king Motaraja Uday Singh became a Mughal mansabdar. Therefore, the Jodhpur kings had to stay in the service of the Mughal emperor and go to various warships as per their orders. The feudatories were the backbone of the military power of the ruler. Were the backbone of the feudal kingdom. The responsibility of the state's protection rested on the feudal lords. The feudal lords were appointed to take care of the borders and in the absence of the ruler to take care of the capital and the citadel. Therefore, he too had to go to the place of being with the Rathore ruler. The Mughal emperor himself made the final decision of the successor of the Rathore king who received the Mughal mansab. Therefore, after the establishment of the Mughal hegemony, the importance and power of the feudal lords was greatly reduced in this context. In every pargana of Jodhpur state, a fixed army was kept by the state. The basic function of the said army was to maintain peace and order in the parganas, but the army was also used in military operations when needed. In addition, the state had its own separate army under the direct control of the ruler. This army used to stay in Jodhpur. This army of the state consisted of cavalry, armistice, ostrich riders ie Othi, artillery and infantry. The entire responsibility of the military system was of Bakshi. The Central Standing Army was paid in cash. Jodhpur's military system was based on tenancy under Mughal influence, on the basis of which Rekha was built. In the beginning of the Jodhpur state, later the feudal system became the main pillar of military power and order. The excessive dependence on the feudal lords from the military point of view by the state of Jodhpur also caused damage to the kingdom in the period, in the absence of a permanent army of the king to control the feudals, the internal and external affairs and successors of the kingdom were always decided by the feudal advice and Started to complete with consent. The Rathore's brotherly military system initially served as an extension of empire expansion, all the feudals were always ready to sacrifice themselves for the sake of the state, but converted the military system from Mughal influence to a lease, then the feudal lord The loyalty of the state decreased and they continued to obtain new lease. In that proportion, the army did not renew and according to the terms of the lease none of the tenants made proper arrangement of the military system which went on to prove fatal during the Maratha invasion.

मुख्य शब्द : भाई बंट, चाकरी, रेख, ठिकाना, तागीरात, मुण्डकटी, कुरब, भोम–बाब
Bhai Bunt, Chakri, Rekha, whereabouts, Tagirat, Mundkati, Qurb, Bhom-Bab

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही राज्य की आन्तरिक व बाहरी सुरक्षा के लिए योग्य राजा के साथ, एक सशक्त सेना भी अनिवार्य थी। मध्यकाल तक सेना की कुशलता ही राज्य की सुरक्षा की अनिवार्य शर्त बन गई। राव सीहा द्वारा स्थापित मारवाड़ में राठौड़ राज्य अपने स्थापना से ही आन्तरिक व बाहरी शत्रुओं तथा स्वजनों के विद्रोही प्रवृत्ति से मुकाबला कर एक स्वतंत्र मारवाड़ राज्य स्थापित करने में सफल रहे। राठौड़ सेना प्रारम्भ काल से ही राजभक्ति, नैतिक मूल्यों से ओतप्रोत थी, वे विपरीत परिस्थितियों में भी राज्यसेवा में अपना सर्वोच्च बलिदान देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। जोधपुर राज्य सेना में केवल राजपूत जाति को ही सैन्य कार्य के लिए रखा जाता था। स्वबन्धु व रक्त की पवित्रता को कठोरता से पालन किया गया। जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था का स्वरूप राव जोधा के ''भाई–वन्त'' (भाई बंट) सिद्धान्त से प्रेरित होकर एक मजबूत सैन्य व्यवस्था में रूपान्तरित करने में नींव का काम किया। राव जोधा ने अपने स्वजनों, भाई–बन्धुओं व अन्य राजपूत कुलिन वंशीय क्षत्रियों को स्थाई जागीर देकर स्थाई सैन्य व्यवस्था की शुरूआत की। राठौड़ों की सामन्तीय व्यवस्था ही मुख्य रूप से सैन्य संगठन की रूपरेखा थी। सम्पूर्ण जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था का स्वरूप व संरचना सामन्तीय व्यवस्था पर टिकी हुई थी। राठौड़ सैनिक राज्य के प्रति वफादारी व स्वतंत्रता का प्रतीक जोधपुर किले के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। राठौड़ सेना राजपूताना की सबसे बड़ी व प्रमुख सेना थी। ये सेनाऐं राज्य के हर हिस्से की सुरक्षा सुनिश्चित करती थी। राठौड़ सेना का एक ही लक्ष्य था, शत्रु पर जीत व हर जगह गर्व व इज्जत के साथ रहना। सेना की सर्वोच्च कमान राजा के पास होती थी। राज्य की सुरक्षा के लिए राठौड़ सेना हमेशा तैनात रहती थी। सेना को संगठित, व्यवस्थित व मजबूत करने में सामन्तीय व्यवस्था ने अहम भूमिका का निर्वहन किया। जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था ने जोधपुर के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राज्य के स्थापना के समय मारवाड़ की सैन्य प्रणाली प्राचीन पद्धति पर ही संगठित थी। 16वीं सदी में राठौड़ राजपूत राज्यों में सामन्ती संगठन के निश्चित स्वरूप पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ा। मध्यकालीन राजस्थान के राजपूतों में सामन्तीय व्यवस्था थी। यह व्यवस्था एक प्रकार से सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का ही स्वरूप थी, जिसमें नेता के रूप में एक राजा होता था, जो सामन्तों के सहयोग से राज्य के प्रशासन का कार्य संचालन करता था।

सामन्त का अर्थ है वीर अथवा योद्धा। व्युत्पत्ति मूलक दृष्टि से 'सम' उपसर्ग में 'अत' प्रत्यय जुड़ने से 'सामन्त' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है सम्यक् अंतःयस्थ अर्थात् अंत अच्छा है। सामन्त शब्द के अन्तर्गत सुरक्षा का भार संभालना, राजा के लिए सेना जुटाना, युद्ध करना तथा अपने अधीनस्थ को दण्ड देना, मार्गों की सुरक्षा करना आदि कार्य आते हैं। सामन्तवाद वह सामाजिक व्यवस्था थी, जहाँ जागीरदार राजा के लिए लड़ते थे, उसके बदले राजा उसे सम्मान देता था।

राठौड़ सत्ता के मारवाड़ में स्थायी रूप से स्थापित होने से पूर्व सभी भू–स्वामी अपने क्षेत्र की रक्षा करने के लिए निरन्तर पड़ोसियों से संघर्षरत थे, इसलिए राजा व जागीरदारों दोनों की जरूरत ने जागीरदारी प्रथा को अंगीकार किया। प्रारम्भ में राव जोधा ने अपने स्वबन्धुओं पर ही विश्वास कर उन्हें भू–भाग देकर राठौड़ वंश के प्रति स्वामीभक्त बनाया, ताकि भविष्य में कोई भी शक्तिशाली जागीरदार विद्रोह करके नये वंश की स्थापना नहीं कर सके। प्रारम्भ में राजा के पास पर्याप्त संसाधन नहीं होने से, उसने विशाल सेना का निर्माण व संगठन नहीं किया और युद्ध के समय सेना के लिए जागीरदारों की सेना पर निर्भर हो गया। जागीरदारों ने भी संकटकाल में राजा की आज्ञा मिलते ही नियत समय पर ससैन्य सेवा में उपस्थित होकर राजधर्म का पालन किया। कालान्तर में जागीरदारों ने भी अपने भू–क्षेत्रों को अपने पुत्रों व भाइयों में विभाजित कर दिया, लेकिन सम्प्रभुता का स्त्रोत हमेशा राजा के पास ही रहा। इस प्रकार के प्रगाढ़ संबंध होने से जोधपुर के राजा को कभी भी स्वयं की निजी सेना के निर्माण की आवश्यकता नहीं पड़ी। युद्ध के समय या संभावित आक्रमण होने पर सामन्तों, ठाकुरों या जागीरदारों द्वारा ही सेना इक्ट्ठा की जाती थी। राजस्थान के अन्य रजवाड़ों के समान जोधपुर के सामन्त भी प्रमुख रूप से दो वर्गों में विभक्त थे। सामन्तों का एक वर्ग ऐसा था, जिसका उद्भव राजकुल से हुआ था। दूसरे वर्ग में अन्य समकक्ष राजपूत सामन्त सम्मिलित थे। स्वकुलीय सामन्तों का राजा के साथ बन्धुत्व एवं रक्त का संबंध था। वे स्वामी धर्म के सिद्धान्त से उत्प्रेरित होकर राजा को सहयोग देने को तत्पर रहते थे और राज्य के बराबरी के हिस्सेदार होने का दावा भी करते थे। राजा की ओर से अपने भाई–बेटों को जीवन निर्वाह के लिए भूमि प्रदान की जाती थी, जो उसकी वंशानुगत जागीर के रूप में रहती थी, समय के साथ–साथ ऐसे जागीरदारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई।[1]

जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था : जागीरदारी प्रथा (1453–1531 ई.)

12 मई, 1459 ई. को राव जोधा ने जोधपुर दुर्ग व नगर की नींव रख कर एक नये युग की शुरूआत की।[2] इस समय जोधपुर में एक सशक्त व स्थाई राठौड़ सत्ता की स्थापना हुई। जोधपुर में राव जोधा ने अपने अधिकृत व विजित भू–भाग को अपने भाई–बन्धुओं, पुत्रों व विभिन्न सरदारों में विभाजित कर उपकृत किया। कालान्तर में इन्हीं के सैनिक सहयोग व समर्थन से विस्तृत जोधपुर राज्य का भविष्य में निर्माण हुआ। राव जोधा ने अपने भाइयों को निम्न गाँव प्रदान किये[3]– अखेराज को बगड़ी, चांपा को कापरड़ा व बनाड़ा, डूंगर को भाद्राजूण, बाला को खरला, साहली व खोरड़ी, रूपा को लहुओं का क्षेत्र चांडी, मंडला को बीकानेर स्थित सांदुड़ों, करना को लुणावास, पाता को करणु, वैरा को परगना सोजत का दुधवड़, जगमाल की मृत्यु युवावस्था में हो गई थी अतः उसके स्थान पर उसके पुत्र खेतसी को

नेतड़ा गाँव दिया गया। इसी प्रकार राव जोधा ने अपने पुत्रों को गाँव दिये थे, जिसका विवरण इस प्रकार से हैं[4]– सातल व सूजा (सहोदर भाई) को जोधपुर में ही रखा, नींबा को सोजत परगना किन्तु उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई थी, वरसिंह और दूदा (सहोदर भाई) को मेड़ता, बीका व बीदा (सदोहर भाई) को बीकानेर, भारमल व जोगा (सहोदर भाई) को कोढण, शिवराज को दूनाड़ा और करमसी व रायपाल (सहोदर भाई) को नाहाढसरा गाँव दिया। इस प्रकार जोधपुर राज्य में सामन्तशाही व्यवस्था (जागीरदार) की नींव, राव जोधा ने ही रखी थी। ये समस्त सामन्त अपने–अपने परगनों में एक अर्द्ध स्वतंत्र शासक की भांति राजकार्य का संचालन करते थे। शासक को अपने राज्य के विस्तार तथा राज्य की सुरक्षा के लिए सामन्तों पर निर्भर रहना पड़ता था। वहीं सामन्तों को भी अपनी स्थिति को बनाये रखने की आवश्यकता के लिये योग्य नेतृत्त्व की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार राव जोधा ने अपने साम्राज्य को अपने भाई–बन्धुओं में विभाजित कर जागीरदार प्रथा को ''भाई वंत'' या ''भाई–बंट'' प्रथा में बदल दिया। जिस प्रकार जोधपुर राजा का अधिकार एक निश्चित भू–प्रदेश था, उसी प्रकार सामन्तों के पास भी अपनी–अपनी जागीरें हुआ करती थी। जागीर या भूमि सामन्तों की व्यक्तिगत सम्पत्ति व उनकी शक्ति का आधार थी, अतः जिन व्यक्तियों के पास जागीर नहीं थी, वे भी राजा से जागीर पाने तथा जिनके पास जागीर थी, वे उसे बढ़वाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। राठौड़ राजा जागीरदारों से ऊँचा व्यक्ति नहीं समझा जाता था, बल्कि शासक व सामन्त, भ्रातृत्त्व व समानता का संबंध था। अपने क्षेत्र में सामन्त पूर्णतः स्वतंत्र थे, फलस्वरूप वे किसी के अधीन रहना अपनी मर्यादा के विरूद्ध समझते थे। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण जब भी उन्हें अवसर मिलता था, वे अपनी शक्ति बढ़ा लिया करते थे और कभी–कभी राजा को निर्बल पाकर उसकी उपेक्षा भी कर देते थे।[5]जोधपुर राज्य अपने स्थापना काल से मुगल अधीनता स्वीकार करने तक, जोधपुर की सैन्य व्यवस्था, परम्परागत रूप से सामन्तों के द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेना होती थी। राजा के पास स्थायी सेना का हमेशा अभाव रहने से आंतरिक विद्रोह व बाहरी आक्रमण के समय जो पदापी सेना, अश्व सेना, शुतुर सेना उपलब्ध करवाई जाती थी, वह सम्पूर्ण सेना सामन्तों की होती थी। जोधपुर में राव जोधा के भाइयों और बेटों की सन्तान में से स्थायी 'सिरायत'' सरदारों का उद्भव हुआ था। वे सभी जोधपुर राज्य के स्तम्भ समझे जाते थे और सिरायत के सरदार के नाम से जाने जाते थे। चांपावत, कूंपावत, जैतावत तथा करनोत राव जोधा के भाइयों के वंशज थे। अतः वे ''जीवणी मिसल'' के सामन्त थे। राव जोधा के पुत्रों से चलने वाली शाखाओं के सरदारों जैसे – मेड़तिया, उदावत, कर्मसोत आदि की गणना ''डावी मिसल'' में होती थी।[6] राव रणमल के वंशज राजा के समक्ष दांयी ओर जीवणी मिसल के सरदार तथा राव जोधा के वंशज बांयी ओर डावी मिसल के सरदारों के बैठने की व्यवस्था सुनिश्चित की गई। जीवणी मिसल का प्रमुख (सिरायत) आउवा के चांपावत ठाकुर को बनाया और डावी मिसल का प्रमुख रीयां के मेड़तिया ठाकुर को बनाया। स्वजातीय राठौड़ सामन्तों के अतिरिक्त गैर राठौड़ राजपूतों को भी पट्टे दिये जाते थे। ये पट्टे सैनिक सेवाओं के बदले में दिये जाते थे। उनके बदले में वे राठौड़ शासकों की अधीनता स्वीकार कर उन्हें कर व सैन्य सेवा देनी पड़ती थी। इस श्रेणी में ईंदा, कच्छवाहा, भाटी, चौहान, तंवर, सिसोदिया आदि राजपूत प्रमुख थे। सामन्तों की जोधपुर में चार मुख्य श्रेणियाँ थी –

1. जीवणी मिसल के सामन्त – चांपावत, कुंपावत, जेतावत, करणोत आदि।[6]
2. डावी मिसल के सामन्त – मेड़तिया, उदावत, जोधा आदि।[7]
3. गनायत में शमिल सामन्त – भाटी, चौहान, कच्छवाहा, सिसोदिया आदि।
4. पदाधिकारी या मुत्सद्दी – दीवान, बख्शी[8] आदि।

राव जोधा ने जोधपुर राज्य की सुरक्षा एवं अस्तित्व को शत्रुओं से रक्षण के लिए शासन में अपने पुत्रों–भाइयों, स्वजनों तथा राजपूतों को संगठित करने व प्रशासन में उनको भागीदार बनाया। ये ही लोग सैन्य व्यवस्था के शक्ति पुंज थे, इसलिए सैन्य व्यवस्था को बनाये रखने तथा साम्राज्य के अस्तित्व के लिए राव जोधा ने अपने राज्य को स्वजनों में विभाजित कर आपसी सौहार्द के भाव उत्पन्न किये।[9] राव जोधा की भाई–वंत व्यवस्था ने भावी जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था के स्वरूप व संरचना को प्रभावित कर उस पर दूरगामी प्रभाव डाले। यह शासन व्यवस्था शासन में विकेन्द्रीकरण, समानता व विश्वास पर आधारित थी। राठौड़ों की विभिन्न शाखाएं व उपशाखाएं राव जोधा के समय से ही जोधपुर में प्रसिद्ध हुई, जो राठौड़ राजवंश की सैनिक सेवा करती रही जैसे – चांपावत, कुंपावत, जैतावत, उदावत, करनोत, करमसोत व पातावत इत्यादि।[10] राव जोधा के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के चयन में भी सामन्तों ने विशेष भूमिका निभाई थी। सामन्तों ने राव जोगा को अयोग्य मानकर उसके स्थान पर राव सातल को शासक बनाया था।[11] इसी प्रकार राव सूजा के पश्चात् सामन्तों ने वीरम के स्थान पर राव गांगा को शासक बनाया।[12] राव गांगा का राजतिलक जैता (जोधा के भाई अखेराज का पुत्र) ने स्वयं किया था, तभी से जोधपुर में राजा के राजतिलक करने की परम्परा बगड़ी के ठाकुर ही करता था।[13] सामन्तों के युद्ध क्षेत्र में अतुल्य शौर्य का प्रदर्शन से खुश होकर राजा जागीरें प्रदान करता था, सैनिक सेवाओं के बदले मिली जागीर ''मूंड कटाई'' कहलाती थी, वहीं वैवाहिक संबंधों से प्राप्त जागीर ''साला कटारी'' कहलाती थी।[14] इन्हें स्थानीय मारवाड़ी भाषा में ''गनायत'' भी कहा जाता था।[15]झाला जैता की बेटी स्वरूपदे का विवाह राव मालदेव के साथ हुआ था, इसलिए राव मालदेव ने जैता को खैरवा गाँव जागीर में दिया था। कुछ अन्य राजपूत दूसरे राज्यों से रूठ कर जोधपुर में आये। जोधपुर शासक ने उन्हें जागीर दे अपना सामन्त बनाया था। राणा उदयसिंह का ठाकुर बालेसा सूजा अपने स्वामी से नाराज होकर राव मालदेव के पास आया, तब राव मालदेव ने उसे कुछ गाँव जागीर में दिये थे।[16] मारवाड़ में मालानी के सामन्तों की एक पृथक श्रेणी थी। राव मल्लीनाथ के नाम पर प्रदेश का नाम मालानी पड़ा। मल्लीनाथ और

उसके भाई जैतमाल के वंशज मालानी के सरदार थे। इनके पाँच मुख्य ठिकानों में से जसोल, बाड़मेर व सिणदरी के ठिकाने मल्लीनाथ के वंशजों के पास रहे और नगर तथा गढ़ा,जैतमाल के वंशजों के थे। मारवाड़ के ठाकुर, मारवाड़ के शासक को नाममात्र का ही कर देते थे, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी सेना सहित महाराजा की सेवा में उपस्थित हो जाया करते थे।[17] सामन्तों की एक अन्य श्रेणी भोमिया राजपूतों की थी। उन्हें सीमान्त क्षेत्र की रक्षा के लिये एवं विशेष सेवा के लिये गाँव, जागीर में दिये जाते थे। वे एक छोटी रकम ''फौज बल'' या ''खिचरी लाग'' के रूप में शासक को देते थे। जोधपुर में सांचोर क्षेत्र के चौहान अधिकतर इसी वर्ग के जागीरदार थे, जो भोमिया जागीरदार कहलाते थे।[18] इसके अतिरिक्त भोमिया नामक एक अन्य श्रेणी का भी उल्लेख मिलता है, जिसका परम्परागत रूप से जागीर पर अधिकार होता था, जो वंशानुगत भी होता था। वह स्वयं के बाहुबल से अधिकृत भूमि का स्वामी होता था। वह कृषि भूमि का निःशुल्क भोग (भोमीचार) भी कर सकता था।[19] भोमिया भूमि उसी को मिलती थी, जिसने राज्य की कई तरह से सेवा की हो। भोमिया का अनिवार्य कर्त्तव्य था गाँव, सड़कों एवं कोष की सुरक्षा करना एवं जब तक वे अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे, उनका भूमि पर अधिकार बना रहता था। इनसे राज्य नाममात्र का ही कर लेता था, जिसको ''भोम बराट'' या ''भोम बाब'' या ''भोम बाव'' कहा जाता था।[20] अपने बाहुबल से विजित भूमि सर्वाधिक जालोर परगने में थी, जो ''जोरतलब'' कहलाती थी, जिनके गाँवों की कुल संख्या 106 बताई गई है।[21] खेत या कुआँ जो दरबार से किसी को दिया जाता था, उसे ''भोम'' कहते थे। यह दो प्रकार की होती थी एक तो ''मूंड कटी'' की भोम और दूसरी ''माफी की भोम''। मूंड कटी की भोम में कुछ भी लगान (भोम बाब) नहीं लिया जाता था, क्योंकि उनके पूर्वज राज्य के लिए बलिदान दे चुके होते थे, दूसरी माफीदार भोम होती थी, जो किसी प्रकार की सेवा के बदले में जैसे – गाँव की रक्षा करना, जुरायम पेशा लोगों का पता लगाना, खजाने के रुपयों के साथ ससैन्य जाना और दौरे पर आये राजकीय अधिकारियों के पहरे का प्रबन्ध करना आदि के एवज में दी जाती थी।[22]

राव जोधा के समय से जोधपुर राज्य में सामन्तीय व्यवस्था अपना स्थायी रूप लेने लग गई थी व उसका क्रमशः विकास भी होने लगा था। सामन्तों ने राज्य कार्य में अपना वर्चस्व कायम करना शुरू किया तथा राजा के लिए उनकी अवहेलना करना संभव नहीं था। सामन्तों ने अपने बाहुबल व सेना के वर्चस्व से मारवाड़ के उत्तराधिकार नियम में भी हस्तक्षेप करने लगे, तभी मारवाड़ में एक कहावत प्रसिद्ध थी – ''रिड़मल थापिया जिकै राजा'' अर्थात् राव रणमल के वंशजों की सहायता से ही मारवाड़ के सिंहासन पर कोई आसीन हो सकेगा। राजा के पास निजी सेना का अभाव तथा उसके पास बहुत कम सेना होती थी। सामन्तों की सेना ही राजकीय सेना थी। युद्ध व आक्रमण के समय में राजा पूर्णतः सामन्तों की सेना पर निर्भर रहता था। राव जोधा से लेकर राव मालदेव के शासन काल तक सामन्तों का प्रमुख कर्त्तव्य युद्ध के समय शासक की सैनिक सेवा करना होता था। ये सामन्त स्वामीधर्म एवं स्वामीभक्ति के सिद्धान्त से प्रभावित होकर हमेशा राजा की सैनिक सेवा के लिए तत्पर रहते थे।[23] सैनिक सेवा के बदले में सामन्तों को गाँव की जागीर प्रदान किए जाते थे। प्रत्येक सामन्त को दिये जाने वाले गाँवों की संख्या, उनकी व्यक्तिगत योग्यता और शासक के साथ उसके संबंधों पर निर्भर करती थी। राव गांगा के समय हरदास ऊहड़ द्वारा ''लकड़ चाकरी'' करने का उल्लेख मिलता है। उसे 27 गाँवों सहित कोरणा का पट्टा भी मिला हुआ था, लेकिन हरदास ऊहड़ लकड़ चाकरी अर्थात् प्रतिवर्ष राज्य में नियत परिमाण का ईंधन की पूर्ति करने का कार्य नहीं करता था और केवल विशेष अवसरों पर शासक के समक्ष उपस्थित होकर मुजरा करके लौट जाता था। इस कारण उसकी सेवाओं से असंतुष्ट होने पर राजा ने कोरणा का पट्टा, भाण को दे दिया था। अतः उस समय सामन्तों को सैनिक कार्य करने के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करने पड़ते थे, ऐसा नहीं करने पर उनकी जागीर जब्त भी हो सकती थी।[24] युद्ध में महाराजा की सैनिक सहायता करना ''चाकरी'' कहलाता था। शासक अपने सामन्तों को स्वयं का समर्थक बनाये रखने के लिए उन्हें गाँव के पट्टे देते थे, जैसे राव गांगा ने सेवकी युद्ध में युद्ध करते समय किसन चांपावत के घायल होने पर उसे दुनाड़ा गाँव पट्टे में दिया था।[25] इसी प्रकार राव गांगा ने कुंपा ठाकुर को एक लाख का पट्टा देकर अपना सामन्त बनाया था।[26] राव मालदेव जैसा शक्तिशाली शासक भी अपनी सैनिक क्षमता के लिए अपने प्रमुख सामन्तों, जैता व कूंपा पर निर्भर था। जब शेरशाह सूर ने सुमेल गिरी के युद्ध में छल–कपट से उसके सामन्तों में फूट डालने की कोशिश की और उसमें उसे सफलता भी मिली। जब राव मालदेव को यह समाचार मिला कि उसके प्रमुख सामन्त शेरशाह से मिल गये हैं, तो वह शीघ्र ही रणक्षेत्र छोड़कर चला गया तथा सुमेल गिरी के युद्ध में जैता व कूंपा शेरशाह के विरूद्ध लड़ते हुये वीरगति को प्राप्त हुये।[27]

वीरम के पुत्र चूण्डा ने मण्डोर पर अधिकार कर राठौड़ शक्ति को पुनः स्थापित होने का एक अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रसंग में यह कहावत प्रचलित हो गई कि – ''मालेरा मढ़ै ने वीरम रा गढ़ै'' अर्थात् मल्लीनाथ के वंशज छोटे मढ़ैयों में रहने लगे व वीरमदेव के वंशज गढ़ों (दुर्गों) में रहने लगे।[28] राव जोधा ने अपनी पैतृक सम्पत्ति को हस्तगत करने के उपरान्त उसे विस्तारित करने का प्रयास किया, जिसमें उसे आशातीत सफलता मिली। इस प्रकार राव जोधा के समय राठौड़ राज्य एक निश्चित स्वरूप लेने लगा और इसी के साथ एक विस्तृत राज्य की सुरक्षा के लिए सामन्तशाही के साथ सैन्य व्यवस्था भी आकार लेने लगी। नैतिक दृष्टि से सामन्त सैन्य आवश्यकता के लिए राजा की सहायता करने के लिए बाध्य थे। सामन्त राजा के अस्तित्व पर पूर्णतः निर्भर थे। राजा है तो, सामन्त का अस्तित्व कायम रह सकता था, इसलिए सामन्त हमेशा आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा के लिए तत्पर व सजग रहता था। शासक के साथ उन्हें भी शासन कार्य में हिस्सा मिलता था।[29] राजा जिन लोगों को जागीर दिया करता था, उनसे सेवा प्राप्त करता था। वह सेवा सैनिक सेवा के

अतिरिक्त अन्य प्रकार की भी हो सकती थीं। सैनिक सेवा तो प्रत्येक ठाकुर करता था, उसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की सेवाएं भी करते थे। राव जोधा के समय में उसके भाई–पुत्रों ने मिलकर कई ऐसे क्षेत्र जीते, जिन पर पहले पूर्ववर्ती किसी भी राठौड़ शासक का कोई अधिकार नहीं था। ऐसे क्षेत्र राव जोधा ने उन क्षेत्रों के विजेताओं के ही अधिकार में रहने दिये।[30] यही व्यवस्था मेवाड़ और जैसलमेर में भी प्रचलित थी।[31] पूगल के स्वामी राव केल्हण के पौत्र और चाचा के पुत्र रणधीर को भाई–बंट में देरावर मिला था। इसी प्रकार राव वैरसल के पुत्र जागायत को भाई–बंट में केहरोर मिला था। राव शेखा केल्हणोत भाटी के वंशजों में सारा क्षेत्र बंट गया था।[32] इसके बदले में ये भाई और पुत्र भी राज्य की सेवा करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य वंशीय राजपूत और अन्य जातियों के लोगों को भी शासकीय सेवा के बदले में जागीरें दी जाती थी, परन्तु तब प्रायः यह सारी कार्यवाही मौखिक आदेशों से ही होती थी, परन्तु राव मालदेव के शासनकाल में इस सामन्ती शासन संगठन में परिवर्तन होने लगा और राज्य के केन्द्रीय शासन को अधिक सबल बनाने के प्रयत्न हुये। यही नहीं राव मालदेव के समय में जागीरों के पट्टे देने की परम्परा भी प्रारम्भ हो गयी थी।

जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था : पट्टेदारी प्रथा (1532–1818 ई.)

आरम्भिक मध्यकाल में सैन्य प्रणाली प्राचीन पद्धति पर ही संगठित थी। तुर्कों के आक्रमण के समय राठौड़ सेना की कमजोरी एवं पिछड़ापन स्पष्ट दिखाई देता है। भारत में मुगल साम्राज्य के स्थापना के साथ ही राजपूताना की परम्परागत सैन्य व्यवस्था जो सामन्तीय व्यवस्था पर पूर्ण रूप से निर्भर थी, में आमूलचूल परिवर्तन होने लगे। मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था ने जोधपुर की सैन्य व्यवस्था को प्रभावित किया और आवश्यकता अनुसार उसमें परिवर्तन करके उसे ओर सशक्त बनाने की कोशिश की तथा सेना में सामन्तों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेना पर भी निर्भरता कम की गई।

मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत मनसबदारी व्यवस्था, जो सैन्य व्यवस्था का ही एक रूप था, में मनसबदारों को वेतन, नगद या जागीर के रूप में प्रदान किया जाता था। मुगल मनसबदारी व्यवस्था ने राठौड़ों की भाई–वंत सैन्य प्रणाली को प्रभावित किया। जोधपुर राज्य शक्ति पर आधारित था। जोधपुर राज्य व सेना एक दूसरे की पूरक थी। समस्त जोधपुर के सैन्य संगठन को जाति व्यवस्था ने प्रभावित किया। जिस प्रकार समस्त जोधपुर राज्य विभिन्न इकाइयों में विभक्त था, उसी प्रकार राज्य की सम्पूर्ण सेना भी इकाइयों में विभक्त थी। प्रत्येक सैन्य इकाइयाँ ठाकुरों के अधीन हुआ करती थी, जो अपनी सेना के सेनापति होते थे। राव मालदेव के समय जैता, कूंपा, पृथ्वीराज, नगा भारमलोत इसी प्रकार अपनी जागीरों और सेना के प्रधान थे।[33] स्वयं राजा के अधिकार में भी निजी सेना रहती थी, पर संभवतः राव मालदेव के समय वह अधिक सशक्त नहीं रही होगी और अधिकांश सेना ठाकुरों की सेना का एकत्रीकरण मात्र ही रहा होगा। राज्य पर आक्रमण के समय इस समस्त सेना का एकत्रीकरण दो प्रकार से किया जाता था। प्रथम सहायता के लिए ठाकुरों को आमंत्रित करके, पर इसमें यह आवश्यक नहीं था, कि आमंत्रण पर सभी ठाकुर, राजा की सहायता करे। राव मालदेव ने अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में मालाणी, सिवाणा आदि के ठाकुरों को फौज के साथ चलने के लिए आमंत्रित किया था, पर इन्होंने उसका साथ नहीं दिया। इस कारण राव मालदेव को बाद में इन स्थानों को अधिकृत कर प्रत्यक्ष अपने अधिकार में लाना पड़ा।[34] सुमेल गिरी के युद्ध के समय राव मालदेव के पास 80,000 वीर योद्धा थे। जैता व कूंपा सरदारों के पास 12,000 घुड़सवार थे। सेना को एकत्र करने का दूसरा साधन था बलपूर्वक स्वतंत्र जागीरों को अधिकृत कर उन्हें आवश्यकता के समय सेना देने के लिए बाध्य करना। राव मालदेव ने अपने समय में इसी प्रकार सभी स्वतंत्र जागीरों, जैसे – मेड़ता, सिवाणा आदि को अधिकृत कर उन्हें सैनिक सहायता देने को बाध्य किया। शत्रु द्वारा राज्य पर आक्रमण करने के समय राजा अपने ठाकुरों की और ठाकुर, अपने ग्राम ठाकुरों की सभा बुलाकर विचार किया करते थे। इस प्रकार आपत्ति के समय सारे राज्य की सहमति ले ली जाती थी।[35] राव मालदेव ने सामन्तों के सहयोग से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उसकी विजय यात्रा में चांपा व कूंपा का बड़ा योगदान रहा था। जोधपुर के शासक अपने सामन्तों को सदैव प्रसन्न रखने का प्रयास करते थे। सामन्त राजा की शक्ति थे, परन्तु शासक के व्यवहार से अप्रसन्न हो जाने पर वे राज्य के लिए घातक भी सिद्ध होते थे। राव मालदेव ने अपने कुछ स्वजातीय सामन्तों को नाराज कर दिया। उसे उसका दुष्परिणाम भुगताना पड़ा और शेरशाह के विरूद्ध सुमेल गिरी के युद्ध में पराजय का सामना करना पड़ा।[36] राव चन्द्रसेन के शासनकाल में भी सामन्तों ने जोधपुर की राजनीति में सक्रिय भाग लिया था। राव मालदेव की मृत्यु के पश्चात् राव चन्द्रसेन उत्तराधिकारी बने, जबकि राम और उदयसिंह बड़े थे। राज्यासीन होते ही कुछ सामन्त उनसे नाराज हो गये।[37] सरदार जैतमाल जैसावत, पृथ्वीराज कूंपावत, महेश कूंपावत आदि ने राव चन्द्रसेन के भाइयों को उनके विरूद्ध उकसाया, तब बड़े भाइयों ने अपने अधिकार को प्राप्त करने का निश्चय किया। जोधपुर के सामन्त दो खेमों में बँट गये। कुछ सामन्त राव चन्द्रसेन के साथ थे, तो कुछ ने उसके विद्रोही भाइयों का साथ दिया। इस गृहकलह के कारण जोधपुर राज्य की शक्ति क्षीण हुई और मुगलों को जोधपुर में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हुआ। राव चन्द्रसेन की सेना ने राम व रायमल को पराजित कर भगा दिया। चन्द्रसेन और उदयसिंह के मध्य ''लौहावट का युद्ध'' हुआ, जिसमें दोनों तरफ से अनेक योद्धा मारे गये।[38]राव चन्द्रसेन विजयी हुआ। उदयसिंह की ओर से राठौड़ जोगा सादावत मांडणोत, राठौड़ ईसरदास, अमरावत मंडला, राठौड़ हींगोला, नेतावत पता, राठौड़ कल्याणदास महसोत, भाटी वैरीसाल सांकेरात, भाटी जयमल, तिलोकसी परबतोत, मोकल गंगादासोत गागरिया राठौड़, खींवराज आपमलोत आदि मारे गये। राव चन्द्रसेन की ओर से अरड़कमल चूंडावत का पौत्र राठौड़ लक्ष्मणभीमोत मारा गया।[39] चांदा मेड़तिया राव चन्द्रसेन की ओर था।मानसिंह सोनगरा, रणसी ठाकुर मांडण जी चांपावत, जैतमाल जी जैसावत,

रावल मेघराज आदि प्रभावशाली सरदारों ने इस युद्ध में राव चन्द्र सेन की मदद की थी।[40] अधिकांश मेड़तिया सरदार राव चन्द्र सेन के विरोधी थे, इसके अतिरिक्त कूंपावत, चांपावत, ऊदावत आदि भी पूर्ण रूप से उसके सहयोगी नहीं रहे। राव चन्द्र सेन के सामन्त भी उसके दुर्व्यवहार से अप्रसन्न थे, अतः उसे मुगल सेना से पराजित होकर जोधपुर से भागना पड़ा व मुगल सेना का जोधपुर पर अधिकार हो गया। अतः मुगल शासकों के सम्पर्क में आने से पूर्व राजा व सामन्तों के मध्य अधिकारी एवं सेवक का संबंध नहीं था। राजा, जागीरदारों से ऊँचा नहीं समझा जाता था, बल्कि राजा व सामन्त में परस्पर समानता का संबंध था। अतः कभी–कभी राजा को निर्बल देखकर उसकी उपेक्षा भी कर सकत `थे, लेकिन जब जोधपुर के शासक मुगल शासन पद्धति (मनसबदारी व्यवस्था) के प्रभाव में आए, तब शासक एवं सामन्त दोनों ही मुगल बादशाह के अधीन कार्य करने लगे और राजा–सामन्त में सामंजस्य टूटने लगा। मारवाड़ का रक्षक तो स्वयं मुगल बादशाह बन गया, परन्तु मारवाड़ की सेना का ढाँचा मुगल काल में सामन्तों पर ही निर्भर था। यह स्थिति 18वीं शताब्दी के मध्य तक बनी रही। जोधपुर की सेना एक तरफ से विभिन्न सामन्तों की सेना में बंटी हुई थी, युद्ध के अवसर पर ही सामन्त द्वारा उन्हें एकत्रित किया जाता था। मुगल सम्पर्क में आने के पश्चात् जोधपुर राज्य में भाई–वंत व्यवस्था की जगह ''पट्टेदारी व्यवस्था'' की शुरूआत हुई। सर्वप्रथम मोटा राजा उदयसिंह ने वंशानुगत रूप से दी गई जागीरों से ''पेशकशी'' (पेशकश) नामक कर भी लिया जाता था। पेशकशी वह कर होता था जो किसी जागीरदार के पुत्र को जागीरदार की मृत्यु के पश्चात् नये उत्तराधिकारी को नजराने के रूप में देना पड़ता था। यह कर सर्वप्रथम मोटा राजा उदयसिंह द्वारा जोधपुर के सामन्तों पर लगाया गया। इस प्रकार यह एक तरह से ''उत्तराधिकारी कर'' था। यह कर नहीं देने पर मृत सामन्त के उत्तराधिकारी से जागीर जब्त कर ली जाती थी। सामान्यतः यह जागीर की वार्षिक आय का तीन चौथाई भाग हुआ करता था, परन्तु सवाई राजा शूरसिंह ने पेशकशी की रकम जागीर की एक वर्ष की आय के बराबर कर दी थी। महाराजा अजीतसिंह ने राजराजेश्वर की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् इसका नाम परिवर्तित कर ''हुक्मनामा'' कर दिया[42], लेकिन जब अजीतसिंह अव्यस्क था तब औरंगजेब ने जोधपुर पर अधिकार कर उसे खालसा कर दिया, फिर भी मारवाड़ की प्रजा और सामन्त महाराजा को आर्थिक सहयोग करते रहते थे। अजीत सिंह के जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लेने के पश्चात् यह रकम ''तागीरात'' के नाम से हुक्मनामा के साथ वसूल की जाने लगी थी। महाराजा विजयसिंह के समय मराठों के उपद्रवों को दबाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ी, तब इस कर की रकम दोगुना कर दी गई थी। महाराजा भीमसिंह के दीवान सिंघवी जोधराज ने इसके साथ ''मुतसद्दी–खर्च'' नामक एक कर ओर लगाया था। यदि जागीरदार की निःसंतान मृत्यु हो जाती थी तो उसका दत्तक पुत्र भी उस जागीर को प्राप्त कर सकता था, परन्तु उसे सामान्य से अधिक राशि ''हुक्मनामा'' के रूप में देनी पड़ती थी।[43] मुगलों के सम्पर्क में आने के पश्चात् राजा शूरसिंह ने जागीरदारों से उनकी जागीर के बदले ''रेख''[44] नामक वार्षिक कर लेना प्रारम्भ किया। इस प्रकार बादशाह अकबर के समय में ही ''जागीर'' और ''रेख'' शब्दों का प्रचलन हुआ था, जिसे जोधपुर के शासकों ने भी अपनाया। यद्यपि उस समय रेख की राशि निश्चित नहीं थी, परिस्थितियों के अनुसार इसमें उतार–चढ़ाव आता रहता था। रेख का हिसाब रखने के लिए इसे दो रूपों में लिखा जाने लगा – प्रथम ''पट्टा रेख'' व द्वितीय ''भरत रेख''। पट्टा रेख जागीर की कुल वार्षिक आय दर्शाती थी और भरत रेख उसका एक भाग था जो राजकोष में जमा होता था।[45] जागीरदारों को अपने शासक के अधीन रहकर मारवाड़ के बाहर मुगलों के लिए युद्ध करना पड़ता था, अतः जागीरदारों से किसी अन्य प्रकार का कर नहीं लिया जाता था। यहाँ यह कहना होगा कि उस समय राजपूत सरदारों को जागीरें देने का मुख्य कारण यही था कि वे महाराजा के साथ प्रत्येक युद्ध में स्वयं भाग लेकर उसकी सहायता करे। किसी जागीरदार द्वारा राज दरबार में रहकर बिना किसी प्रकार के वेतन के की गई सेवा को भी स्थानीय भाषा में ''चाकरी'' कहा जाता था। कुछ प्रमुख सामन्तों को चाकरी से मुक्ति मिल जाती थी, परन्तु उन्हें विशेष अवसरों पर दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। इसके लिए राजा अपने सामन्तों को खास–रूक्का भेजकर दरबार में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित करता था। किसी भी सामन्त को खास–रूक्का भेजना एक विशेष सम्मान सूचक माना जाता था। यदि इस प्रकार का रूक्का मिलने के पश्चात् भी कोई सामन्त राज दरबार में उपस्थित नहीं होता था तो उसे राजद्रोही समझा जाता था, जिसका उसे उचित दण्ड मिलता था।[46] राव मालदेव के देहान्त (1562 ई.) के कुछ समय बाद जोधपुर पर मुगलों का अधिपत्य हो जाने के फलस्वरूप जोधपुर राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। यह स्थिति लगभग 20 वर्षों तक बनी रही। मोटा राजा उदयसिंह (1583–1595 ई.) को जोधपुर दिये जाने पर जोधपुर राज्य में पुनः राठौड़ सत्ता स्थापित हुई, लेकिन मुगल अधीनता में मुगल शासन की अधिकांश प्रशासनिक व सैन्य व्यवस्था जोधपुर राज्य में स्थापित हो चुकी थी। इसी के फलस्वरूप राव जोधा द्वारा स्थापित ''भाई–वंत'' के स्थान पर ''पट्टेदारी व्यवस्था'' प्रारम्भ की गई। सामन्तों और अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को राज्य की सैनिक या असैनिक सेवा के बदले में राज्य की ओर से निश्चित आय की जागीर का पट्टा प्रदान किया जाने लगा। पट्टे में इस बात का स्पष्ट रूप से वर्णन होता था कि कितने घुड़सवार, शुतुर सवारों से राज्य व राज्य के बाहर चाकरी करनी होगी। रेख के आधार पर घुड़सवार तथा शुतुर सवार का निर्धारण किया जाता था। सामन्तों को राज्य की सैन्य सेवा के बदले में जागीर का पट्टा दिया जाता था, लेकिन किसी कारण विशेष पर राज्य की सेवा के बिना भी जागीर के पट्टे दिए जाते थे।[47] पट्टेदारी व्यवस्था ने सामन्त के अधिकार व स्थिति को ही बदल दिया। पुरानी सामन्तीय व्यवस्था ''भाई–वंत'' या ''भाई–बंट'' पर आधारित थी, उसकी जगह सामन्तों में पदसोपान की श्रेणी निर्धारित की गई। राठौड़ सरदारों ने नवीन पट्टेदारी व्यवस्था को सैन्य सेवा के बदले स्वीकार

कर लिया। पट्टा देते समय सरदार के कर्त्तव्य भी निर्धारित किये गये।

इरफान हबीब के अनुसार, जागीर दो शब्दों जय + गीर का संयुक्त रूप है, जिसका शाब्दिक अर्थ है राज्य द्वारा प्रदत्त भूमि का वह भाग, जिससे प्राप्तकर्ता (जागीरदार) उस भू–क्षेत्र से राजस्व वसूल करने का वैधानिक अधिकारी होता है।[48] मुगलकाल में मारवाड़ में पट्टेदारी व्यवस्था में नगद वेतन देने की अपेक्षा जागीर के रूप में वेतन देने का प्रचलन था। वस्तुतः जागीर शब्द मुगल प्रभाव की देन है। जोधपुर राज्य में गाँव पट्टे में देने का उल्लेख मिलता है। जागीरदारों को प्राप्त पट्टे के गाँव मुख्यतः दो प्रकार के होते थे – चाकरी का पट्टा व गैर चाकरी का पट्टा।

चाकरी का पट्टा सरदारों को सैन्य सेवा व प्रशासनिक सेवा के बदले दिया जाता था, ये अस्थायी पट्टे होते थे, जिसका सेवाओं (चाकरी) के साथ संबंध होता था। उसे 'तनख्वाह जागीर' भी कहते थे। जब तक पट्टेदार सेवा में रहता था, गाँव पट्टे के रूप में उपभोग करता था। सेवा से हटते ही उसका गाँव जब्त कर लिया जाता था।[49] सामान्य रूप से जागीरदार को वेतन नगद नहीं दिया जाता था, उसका वेतन जागीर से प्राप्त होने वाली भू–राजस्व से समाहित किया जाता था। पट्टा हमेशा राजा द्वारा वेतन के बदले प्रदान किया जाता था। राज्य की हमेशा कोशिश रहती थी कि प्रदत्त पट्टे से प्राप्त भू–राजस्व व वेतन में समानता हो।[50] सामान्यतः वेतन का निर्धारण व पट्टे में उल्लेखित रकम एक समान होनी चाहिए। कभी–कभी पट्टे में उल्लेखित राशि व निर्धारित राशि गाँव से वसूली जाने वाली राशि कम होती थी, तो इसकी क्षतिपूर्ति के लिए पट्टेदार को नगद राशि दी जाती थी, उसे ''तलब राशि'' कहते थे। तलब राशि हमेशा नगद दी जाती थी, जब तक अतिरिक्त पट्टा पट्टेदार को नहीं दिया जाता हो। पट्टेदार को भू–राजस्व कम मिलने पर अतिरिक्त पट्टा आवंटित किया जाता था, जो तलब राशि के बराबर होता था। प्रत्येक गाँव से प्राप्त रेख राशि, पट्टे में निर्धारित वेतन के बराबर होती थी। जब पट्टा निर्धारित या प्रदान किया जाता था, तो उसमें समस्त सूचनाएँ लिपिबद्ध की जाती थी, ताकि पट्टेदार को रेख चाकरी के साथ अन्य कर्त्तव्यों का ध्यान रहे। उसकी एक प्रतिलिपि या नकल पट्टेदार को भी दी जाती थी या भेजी जाती थी। उसमें पट्टेदार के कर्त्तव्यों व अधिकारों का विधिपूर्वक उल्लेख होता था।[51] पट्टा विशेष परिस्थितियों में भी प्रदान किया जाता था। पट्टेदार को जोधपुर राज्य की सीमा के अन्दर व राज्य के बाहरी सीमा पर सैन्य सेवा करनी पड़ती थी। पट्टेदार द्वारा रखे जाने वाले पदापी सेना, अश्व सेना, शुतुर सेना, उसकी वेतन व श्रेणी पर निर्भर करती थी। मुंहता नैणसी री ख्यात के अनुसार, 1000 रुपये की रेख पर पट्टेदार को एक घुड़सवार रखना पड़ता था। यह रेख बढ़ने पर उसी अनुपात में घुड़सवारों की संख्या पट्टेदार द्वारा स्वतः ही बढ़ायी जाती थी।[52] मेड़ता के राठौड़ पहाड़ सिंह के पुत्र रतनसिंह को 4000 रुपये की रेख का पट्टा दिया गया था, उसी के अनुरूप उसने चार घुड़सवारों की व्यवस्था कर रखी थी।[53] इसी प्रकार हेमराज के पुत्र प्रेमसिंह चौहान को 2000 रुपये का रेख का पट्टा दिया गया तथा उसे एक घुड़सवार रखने का आदेश भी दिया गया। इस प्रकार के विरोधाभास उद्धरणों से पता चलता है कि प्रत्येक 1000 रुपये की रेख पर एक घुड़सवार रखने का नियम कठोरतापूर्वक लागू नहीं किया जाता था। रावल भारमल व रावल महेशदास को संयुक्त रूप से 40,200 रुपये की रेख प्रदान की गई, तब दोनों ने महाराजा का आभार प्रकट करने के लिए 18,200 रुपये की पेशकशी प्रदान की तथा दोनों द्वारा 25–25 घुड़सवार भी भेंट दिये गये। दोनों ने नियमित आवर्तन से पर्याप्त पदापि की व्यवस्था की। यह इस बात को इंगित करता है कि 40,200 रेख पर जागीरदार को 50 अश्वसेना को रखना पड़ता था। अगर घुड़सवार सेना व रेख की राशि का अनुपात निकाला जाये तो वह लगभग 1800 रुपये प्रति घुड़सवार नियत होती है। जब जागीरदार को घुड़सवार व शुतुरसेना रखने का आदेश दिया जाता था, तो उसे 3500 रुपये की रेख प्रदान की जाती थी।[54] सामान्यतः 1000 रुपये की रेख पर एक घुड़सवार रखने की परम्परा थी।

उपर्युक्त उदाहरणों से पता चलता है कि सामन्त को दिये जाने वाले पट्टे में 1000 रुपये की रेख पर एक अश्व सवार रखना पड़ता था। अगर राजा पट्टेदार को अतिरिक्त दायित्व निर्वहन के लिए नहीं कहता तो यह व्यवस्था कठोरतापूर्वक पालन करवाई जाती थी, लेकिन शांतिकाल या युद्ध की आशंका नहीं होने पर पट्टेदार की परिस्थिति देखकर उसमें फेरबदल भी किया जाता था। एक ओर पट्टेदार को राजा के लिए घुड़सवार रखने पड़ते थे, साथ ही उसे शुतुर सेना व पदापि सेना भी रखनी पड़ती थी। समकालीन उपलब्ध साक्ष्यों के अभाव में यह उल्लेखित करना मुश्किल है कि एक पट्टेदार 1000 रुपये की रेख पर कितने शुतुर सेना व पदापि सेना रखता था। समकालीन ख्यातों से पता चलता है कि अश्वसेना, शुतुर सेना, पैदल सेना रखने के लिए पट्टेदार को जो रेख की राशि दी जाती थी वह निश्चित की गई जैसे – 1000 रुपये, 700 रुपये व 500 रुपये की रेख पर क्रमशः एक अश्व सैनिक, एक शुतुर सैनिक व एक पदापि सैनिक रखना पड़ता था।[55] सामन्त द्वारा राजा को निर्धारित पेशकशी की राशि देने पर उसे शुतुर व अन्य पशुओं के रखरखाव से मुक्ति मिल जाती थी। जोधपुर की पट्टेदारी व्यवस्था, मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था का विस्तार रूप था, जिसमें आकस्मिक आपदा पर ही मनसबदार अपनी श्रेणी के अनुसार पशुओं की व्यवस्था करता था। जब जागीरदार को पट्टा दिया जाता था, तो उससे राजा अपेक्षा करता था कि वह एकमुश्त पेशकशी प्रदान करे। यह राजा पर निर्भर करता था कि पेशकशी की रकम नगद ले या घोड़ों व ऊँट के रूप में ले या दोनों भी ले सकता था।[56] राजा पेशकशी लेने के बाद ही सामन्त को पट्टा प्रदान किया जाता था। कई बार सामन्त द्वारा पेशकशी की रकम देने में देरी करने पर पट्टा भी बाद में ही दिया जाता था, ताकि सामन्त पेशकशी दे सके।[57] पट्टा देने का विवरण व पेशकशी का वर्णन बही व विगत में लिखा जाता था। यह कहना मुश्किल है कि रेख, पट्टा व पेशकशी में किसी भी प्रकार का अन्तर–संबंध था। कभी–कभी पेशकशी, रेख की आधी प्रस्तुत की जाती थी,

कभी यह राशि रेख के बराबर होती थी। इस प्रकार के उदाहरण मुश्किल से मिलते है कि पेशकशी की राशि, रेख से ज्यादा होती हो। राजा को दी जानी वाली पेशकशी की राशि सामन्त की आय, उपजाऊ जमीन व अन्य आय के स्त्रोतों को मध्यनजर रखकर मांगी जाती थी। पट्टेदार को अपनी सेवाएं मारवाड़ (देश) के साथ–साथ, मारवाड़ राज्य के बाहर भी देनी पड़ती थी। पट्टा देते समय यह शर्त स्पष्ट रूप से उल्लेखित की जाती थी कि पट्टेदार देश से बाहर सैन्य सेवा देने में किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं करेगा।[58] ये शर्त इसलिए रखी गई थी ताकि राठौड़ राजा, मुगल साम्राज्य के प्रति कर्त्तव्य का निर्वहन कर सके। जोधपुर का महाराजा सरदारों को सैन्य सेवा के लिए मुगल सेवा के लिए भेजता था, ताकि राजा उनकी जागीर पर भी नियंत्रण रख सके। जब वतन जागीर से बाहर पट्टेदार को सैन्य सेवा के लिए भेजा जाता था, तो पट्टेदार के वेतन में अल्पकालीन आवश्यकतानुसार वृद्धि की जाती थी।[59] इस अतिरिक्त वेतन के लिए पट्टेदार को एक अतिरिक्त जागीर मारवाड़ राज्य की सीमा के अन्दर या बाहर आवंटित की जाती थी, जहाँ सामन्त की नियुक्ति होती थी। अगर पट्टेदार को राज्य जागीर देने में असमर्थ है तो उसे नगद वेतन दिया जाता था।[60] पट्टेदार के वेतन में अभिवृद्धि तब तक रहती थी, जब तक पट्टेदार अपनी जागीर से बाहर जाकर राज्य की सैन्य सेवा कर रहा हो, लेकिन पट्टेदार के वापिस अपने वतन जागीर में लौटते ही पुरानी शर्तें लागू हो जाती थी। वतन जागीर से बाहर दिया जाने वाला पट्टा मनसबदार के रूप में आवंटित किया जाता था, जिसे मुगल सम्राट स्थानान्तरित या रद्द कर सकता था। पट्टेदार को जो भी दायित्व सौंपा जाता था, वह सरदार को पट्टा देते समय लिख दिया जाता था। जब रावल भारमल व रावल महेशदास को पट्टा दिया गया तो उनको हिदायत दी गई की, वे अन्य किसी भी प्रकार की 'सासण' (धार्मिक भूमि) प्रदान नहीं कर सकते। इसी प्रकार रिणछोड़ राठौड़ को जब पट्टा दिया गया, तब भी कहा गया की जागीरदार राज्य की अनुमति के बिना ''सासण भूमि'' प्रदान नहीं करे। इस प्रकार की सूचना हुकूमत–बही में नहीं दी गई, इस बही में पट्टा के विवरण पूरे नहीं है। महाराजा अजीतसिंह (1707–1724 ई.) के राजत्वकाल में जब सामन्तों को पट्टा दिया जाता था, तब सामन्तों के अधिकार स्पष्ट रूप से उल्लेखित कर दिये गये।[61] किसी पट्टे में ''घासमारी कर'' का भी उल्लेख किया जाता था। किशनसिंह के पुत्र अरिसिंह राठौड़ को 1667 ई. में (वि.सं. 1724) 16,000 रुपये का पट्टा औरंगाबाद में दिया गया था, तब उसे घासमारी कर लेने का अधिकार भी दिया गया था।[62] पट्टेदार को भू–राजस्व इकट्ठा करने के अतिरिक्त ''मालकर'' का एकत्रिकरण, घासमारी कर तथा अन्य करों को भी पट्टे में जोड़ा जाता था। पट्टेदार को अपने अन्तर्गत आने वाले गाँव के रियाया (किसान) से केवल भू–राजस्व वसूली का अधिकार दिया गया था, वह भूमि का स्वामी नहीं होता था। भूमि पर अधिकार किसान का ही रहता था, जिसे किसी भी काल में परिवर्तित नहीं किया गया। मुगल अधीनता के फलस्वरूप किसान, भूमिकर जागीरदार को नहीं देकर 'हाकिम' को जमा करवाने लगे, यह परिवर्तन मुगल आधिपत्य के परिणामस्वरूप दृष्टिगोचर होने लगा था। हाकिम, पट्टेदार पर अंकुश रखता था और वह पट्टे गाँव में हस्तक्षेप भी करने लग गया था। मुगल प्रभाव की वजह से राठौड़ों में पट्टा हस्तान्तरित भी किया जाने लगा था, उसे ''फेर–बदल–रा–पट्टा'' कहा जाता था।[63] इस प्रकार के पट्टे में राशि एक समान ही होती थी, लेकिन अधिकारों में परिवर्तन हो जाता था। राठौड़ भगवानदास सुन्दरदसोत के पास 'थोम गाँव' का पट्टा, जिसकी रेख 6800 रुपये थी, 1662 ई. में उसे थोम गाँव की जगह बहदवास गाँव पट्टे के रूप में आवंटित किया गया था, लेकिन 1675 ई. में थोम गाँव व अन्य गाँवों को खालसा कर दिया गया। राठौड़ भगवानदास को उसकी जगह जोधपुर परगने में ''टप्पा कोडेना'' जिसमें 23 गाँव शामिल थे, प्रदान किये। सामन्त का पट्टा तभी हस्तान्तरित या खालसा किया जाता था, जब सामन्त द्वारा किसी भी प्रकार की गलती या चूक की हो। कई बार सेवाएं अर्जित नहीं करने अथवा किसी प्रकार का अपराध करने पर भी पट्टा जब्त कर दिया जाता था, जैसे वि.सं. 1817 में महासिंह जैतावत को रेवड़िया गाँव मिला, परन्तु चाकरी नहीं करने पर वि.सं. 1820 में उदयसिंह चांपावत के नाम पट्टा लिख दिया गया था।[64] राठौड़ सुजाणसिंह के पुत्र चुत्रभुज को सोजत का ''पंवनडी लाला'' गाँव मिला था, उसने अपने गाँव के चौधरी की हत्या कर दी, अतः वि.सं. 1718 में पट्टा तागीर कर दिया गया। इसी प्रकार राठौड़ भोजराज ने अपने डेरे में चोरों को रखा, अतः वि.सं. 1724 में उसके पट्टे के गाँव खालसा कर दिया गऐ।[65] डुंगरोत केसरीसिंह के पुत्र हरनाथ का वि.सं. 1723 में ऊनालु (खरीफ) की फसल के समय से 1500 रुपये का पट्टा दिया गया था। वि.सं. 1727 में जब वह साथलणे के थाने पर नियुक्त था, तब पठान हुसैन खाँ के यहाँ चोरी हो गई, तब वह गाँव खालसा कर दिया गया। जब उसने ''तकसीर'' (अपराध) के बदले 400 रुपये दिए तब वि.सं. 1728 में उसका गाँव ''बरकरार'' कर दिया गया। राज्य विरोधी गतिविधियों के कारण भी पट्टा जब्त कर दिया जाता था, जिसे ''गैर–चाकरी'' या ''गैर–बन्दगी'' कहा जाता था। कंटालिया के राठौड़ प्रतापसिंह द्वारा विद्रोह करने पर महाराजा अजीतसिंह ने उसका पट्टा जब्त कर हरिसिंह के पुत्र रूपसिंह के नाम कर दिया।[66] किसी पट्टेदार के सेवा में रहते हुए उसके पट्टे का गाँव खालसा कर दिया जाता अथवा किसी दूसरे को आवंटित कर दिया जाता और तत्काल उसे कोई दूसरा पट्टा नहीं मिलता था, तो उस अवधि में उसे रोकड़ रुपये मिलते थे। सांवलदास उदावत को 8500 रुपये रेख के गाँव प्राप्त थे। वि.सं. 1718 में 'तागीर' कर नगद रुपये देने का प्रावधान रखा, 5000 रुपये का पट्टा देने पर 3500 रुपये की 'तलब' रही अर्थात् उक्त राशि के गाँव आवंटित करने अथवा नगद रुपये शेष रहे। इसी प्रकार भगवानदास उदावत को 4000 रुपये के गाँव प्राप्त थे। वि.सं. 1719 में 'तागीर' करने पर नगद रुपये दिए जाने लगे।[67] पट्टेदारों को दिए जाने वाले पट्टों में कई प्रकार की सूचनाएँ एवं शर्ते लिखी होती थी, जैसे पट्टे का गाँव किस व्यक्ति से तागीर कर दिया अथवा खालसा में से आवंटित किया,

रबी (सियालु) या खरीफ (ऊनालु) की फसल से दिया, कितने घोड़ों की चाकरी करनी पड़ेगी आदि सभी शर्तें पट्टे में अंकित की जाती थी। उदाहरणार्थ – कीरतसिंह राठौड़ को वि.सं. 1766 कार्तिक वदी 12 जोधपुर में 325 रुपये रेख का गाँव सिधपुरा, सोजत परगने का पट्टा आवंटित किया गया। यह गाँव वि.सं. 1765 से खालसा में था, इसलिए वि.सं. 1766 में खरीफ की फसल से पट्टा दिया और एक घोड़े की चाकरी दी।[68]

पट्टा पद्धति का अध्ययन करने से पता चलता है कि मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था के समान सामन्त का पट्टा तीन या चार साल में नहीं बदला जाता था। प्रारम्भ में पट्टेदार को पट्टा सामन्त को जीवनपर्यन्त या उसकी मृत्यु तक प्रदान किया जाता था। मनसबदार के समान वे अनिश्चितता से दूर रहते थे, क्योंकि उन्हें कभी भी जागीर से वंचित नहीं किया जा सकता था, लेकिन मुगल प्रभाव से सामन्त की मृत्यु के उपरान्त महाराज की ईच्छा पर निर्भर करता था कि पट्टा उसके पुत्र या उत्तराधिकारी को प्रदान करें या नहीं। पट्टा प्रदान करते समय यह जरूरी नहीं था कि उसके पूर्वजों द्वारा प्रदत्त राशि की मात्रा उतनी ही होगी या बढ़ाकर प्रदान की जायेगी। सामन्त की हैसियत या पद को देखकर पट्टे की ''रेख'' तय की जाती थी, यह कम या ज्यादा हो सकती थी। विभिन्न परगनों में पट्टे की राशि अलग–अलग होती थी। अजीतसिंह के समय पट्टा अनुवांशिक नहीं होते थे, उन्हें कभी भी खालसा या स्थानान्तरित किया जा सकता था। मारवाड़ में सामन्तों को जागीर के रूप में गाँव, एक ही टप्पे या परगने में नहीं दिये जाते थे, कभी–कभी ये गाँव प्रकीर्ण रूप से टप्पे या परगनों में दिया जाता था।[69] उदाहरणार्थ के रूप में पृथ्वीराज राठौड़ को 12,400 रुपये की रेख का मारवाड़ में पट्टा दिया गया, जिसमें से 5000 रुपये रेख के चार गाँव जोधपुर परगने में, 7400 रुपये रेख के चार गाँव मेड़ता परगने में आवंटित किये गये। कुंपावत विजयसिंह को वि. सं. 1714 में रेख 25,000 रुपये का पट्टा मिला था, जिसमें 13,000 रुपये के 4 गाँव परगना सोजत में, 7000 रुपये के 2 गाँव परगना जैतारण में दिये और 5000 रुपये के 2 गाँव वधारा में रोहतक के मिले थे। इस प्रकार के कई उदाहरण मिलते हैं। इस तरह की व्यवस्था शक्ति संतुलन के लिए व सामन्तों पर नियंत्रण रखने के लिए अपनाई गई थी। सामन्तों को अपने पट्टे में आंतरित स्वतंत्रता पूर्व में प्रचलित भाई–वंत पद्धति के आधार पर मिलती रही और उन्हें अनुवांशिक रूप से पट्टे पीढ़ी–दर–पीढ़ी मिलते रहे। पट्टेदारी व्यवस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका हस्तान्तरणीयता थी। किसी पट्टे के गाँव को 'ठिकाने' का स्वरूप प्रदान करने में पीढ़ी–दर–पीढ़ी जागीरदार को संघर्ष करना पड़ता था, जैसे बगड़ी का ठिकाना राव जोधा की ओर से अपने भाई अखेराज को दिया गया।[70] इसके पश्चात् क्रमशः पंचापण और जैता उत्तराधिकारी हुए, 1544 ई. में सुमेलगिरी के युद्ध में जैता के प्राणोत्सर्ग के बाद उसके पुत्र पृथ्वीराज (वि.सं. 1602–1610) के पट्टे में बगड़ी ठिकाना रहा। इसी प्रकार पृथ्वीराज के मेड़ता युद्ध में मारे जाने पर उसके पुत्र पूरणमल (वि.सं. 1610–1613) के पट्टे में बगड़ी रही। तत्पश्चात् पृथ्वीराज के अनुज देवीदास द्वारा युद्ध अभियानों में विशेष भूमिका निभाने पर पट्टा (वि.सं. 1613–1618) उसके नाम कर दिया। इसके बाद उसके पुत्र आसकरण (वि.सं. 1618–1639) के पट्टे में बगड़ी रही। अनन्तर पृथ्वीराज के पुत्र बाघ के नाम पट्टा (वि.सं. 1639–1644) कर दिया गया। इसके पश्चात् पुनः आसकरण (वि.सं. 1644–1650) के पट्टे में बगड़ी सम्मिलित की गई।[71] इसी प्रकार प्रारम्भ में बगड़ी का ठिकाना पीढ़ी–दर–पीढ़ी वंशानुगत नहीं रहकर भाई–भतीजों को भी मिलता रहा। पट्टे का गाँव वंशानुगत नहीं रहकर किसी अन्य व्यक्ति को भी दिया जा सकता था, जैसे वि.सं. 1808 में फतेहसिंह जैतावत के पुत्र सुरतांण को धवलरा गाँव (3000 रेख में) और माडपुरा गाँव (500 रुपये रेख) का पट्टा दिया गया। माडपुरा वि. सं. 1809 में तागीर (वापस लेना) करके, सांवलदास कच्छवाहा के पुत्र जसा के नाम दिया गया। वि.सं. 1813 में धवलेरा गाँव सुरतांण जैतावत के भाई बैरीशाल को आवंटित किया गया।[72] इसके बाद वि.सं. 1819 में धवलेरा गाँव हिम्मतसिंह जैतावत के पुत्र शेरसिंह के नाम लिख दिया, परन्तु वि.सं. 1820 में उसे पुनः बहाल कर बैरीशाल के नाम किया गया। इस समय हुक्मनामा 400 रुपये निश्चित किए गए।[73] जागीर में वृद्धि भी की जा सकती थी, इस वृद्धि को ''वधारा'' अथवा ''ईजाफा'' कहा जाता था। राठौड़ सकता खेतसी के पहले रेख वि.सं. 1727 में 2000 रुपये थी, फिर 1000 रुपये रेख कम कर दी, फिर 300 रुपये रेख का 'वधारा' किया, जिसके लिए रढीयों (फलोदी) गाँव दिया गया। इसके बाद पुनः 1000 रुपये रेख का वधारा होने पर नगद 1000 रुपये दिए गए।[74] इसी प्रकार ऊहड़ भगवानदास के पास वि.सं. 1719 में 6800 रुपये रेख का पट्टा था, जिसमें 4300 रुपये का 'ईजाफा' किया गया।[75] कुछ जागीरदारों को जो चाकरी करने में असमर्थ या वृद्ध होने पर पेंशन भी दी जाती थी – चांपावत सूरजमल को वि.सं. 1718 में 20,000 रुपये का पट्टा ''घर बैठा नु दियो'' मिला।[76] एक ओर जहाँ जागीर में एक से अधिक गाँव प्रदान किए जाते थे, वहीं दूसरी ओर केवल आधा गाँव या गाँव का कुछ हिस्सा भी दिया जाता था। यह समीकरण जागीरदार की योग्यता पर निर्भर करता था। महाराजा विजयसिंह के समय वि.सं. 1841 में आईदान राठौड़ को वीरावास का आधा गाँव 750 रुपये की रेख में मिला।[77] वि.सं. 1845 में शेरसिंह राठौड़ को गोडांगडी का आधा गाँव 1000 रुपये रेख पर दिया गया था।[78] पट्टाधारी की अल्पायु होने पर उसे चाकरी से मुक्त रखा जाता था। गोपालदास मेड़तिया जिसे रेख 50,000 रुपये का पट्टा मिला था, उसे प्रधानगी करने के बदले में एक वर्ष के 3300 रुपये अर्थात् 275 रुपये प्रति माह से मिलते थे। इसी प्रकार उसने 'वधारा' में मिले गाँव के बदले रोकड़ 7000 रुपये लिये थे, साथ में पोकरण जीत के ईनाम स्वरूप 40,000 रुपये का 'वधारा' भी इसे मिला था।[79] अतः अधिकारी अपनी सेवाओं के बदले नगद वेतन लेना अधिक पसंद करते थे। पट्टा प्रणाली में यह व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है कि एक पट्टेदार के पास यदि एक से अधिक गाँव है और अगर कुछ गाँव कर मुक्त कर दिए गए तो उसके अन्य गाँव जब्त कर दिये

जाते थे, जिससे उसकी आय में सामंजस्य बना रहे।[80] कभी–कभी दो पट्टेदारों का पट्टा संयुक्त करके उनको राजस्व का हिस्सा बराबर बाँट दिया जाता था। महेचा रावल भारमल जगमालोत और रावल महेशदास पतोत को 40,200 रुपये का पट्टा बाँट दिया था।[81] गाँव तागीर होने पर दैनिक वेतन, जिसे ''दीहानगी'' अथवा ''रोजीना'' भी कहा जाता था, का भी प्रावधान था। इसी प्रकार के पट्टे में यदि किसी प्रकार की छूट होती थी तो वह ''रियायती पट्टा'' कहलाता था। पट्टे मौखिक रूप से भी दिए जाते थे, जैसे गाँव कांणाणो का पट्टा वि.सं. 1808 में दुर्गादास के पौत्र रिधकरण को महाराजा के हुक्म (आदेश) से मिला हुआ था, परन्तु इसका पट्टा नहीं लिखा गया था।[82]

''भाई–वंत'' व्यवस्था ने सभी जागीरदारों को अपने क्षेत्रों में वंशानुगत अधिकार प्रदान कर दिये थे। सभी राठौड़ सरदार अपने क्षेत्रों (स्थानों) के माध्यम से आम लोगों में प्रसिद्ध हुये, जो उनके पूर्वजों ने विजित किये थे। ये सभी क्षेत्र जहाँ जागीरदारों ने अपने परिवार के लिए स्थाई निवास स्थान बनाया, वह क्षेत्र कालान्तर में राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुये। ये सभी राजधानी या गाँव ''ठिकाना'' कहलाये और इनके स्वामी ठिकानेदार।[83] पट्टेदारी व्यवस्था ने इन ठिकानेदारों के स्थायी स्वामित्व को नकार दिया। इन ठिकानेदारों की राजधानी (नगर) या गाँव जहाँ इनका परिवार पूर्वजों से निवास करता आया था, उनको छोड़कर सभी गाँवों को स्थानान्तरित करने का अधिकार पट्टेदारी व्यवस्था से प्राप्त हो गया था। राजा जसवंतसिंह के समय गोविन्ददास भाटी के पुत्र पृथ्वीराज भाटी को प्रधान बनाया, तब उसको 40,000 रुपये रेख का पट्टा दिया, साथ में लवेरा ठिकाना भी दिया गया।[84] लवेरा ठिकाना राव मालदेव के समय आनन्द भाटी के पुत्र निंबा भाटी के पास था और उसने अपने परिवार का स्थाई निवास इसे बनाया था। निंबा की मृत्युपरांत लवेरा ठिकाना उनके वंशजों को मिलता रहा। राजा उदयसिंह के समय में लवेरा ठिकाना गोविन्ददास को मिला (वि.सं. 1640), जो राजा शूरसिंह तक चलता रहा। महाराजा जसवंतसिंह के काल में गोविन्ददास की मृत्यु (वि.सं. 1677 ई.) उपरान्त लवेरा ठिकाना उसके छोटे पुत्र पृथ्वीराज भाटी को पट्टे के रूप में दिया गया।[85] लवेरा ठिकाना इस परिवार के पास रहा, लेकिन ज्येष्ठाधिकार का नियम यहाँ लागू नहीं हुआ। लवेरा ठिकाने को अनुवांशिक रूप से इस परिवार का माना गया। ठिकाने को हमेशा सामन्त के वेतन के बदले दिया जाता था। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण सुरतान भाटी के संदर्भ में मिलता है। सुरतान भाटी जो माना भाटी का पुत्र था महाराजा उदयसिंह ने केलवा ठिकाना जागीर के रूप में दिया। महाराजा गजसिंह ने सुरतान भाटी के पुत्र रामचन्द्र भाटी को केलवा ठिकाना जागीर के रूप में दिया। महाराजा जसवंतसिंह के समय राजसिंह कुंपावत को आसोपा ठिकाना व महेशदास चांपावत को आउवा ठिकाना वंशानुगत उत्तराधिकार में मिले। जागीरदारों के ठिकानों के अतिरिक्त पट्टेदारी व्यवस्था में उनके गाँव हस्तान्तरित किये जाते थे। जब तक ठिकानेदार राज्य की सैन्य सेवा करते रहेंगे, तब तक ठिकानों पर से उनके अधिकार कायम रहे।[86] राठौड़ राजाओं द्वारा राठौड़ सरदारों व राजपूत सरदारों को उनके ठिकाने प्रदान करते रहे। राजा के पास यह अधिकार अवश्य आ गया था कि ठिकानेदार की मृत्युपरांत उसके किसी भी उत्तराधिकारी को पट्टा दे सकता था। यह स्पष्ट है कि जब तक ठिकानों ने राजा की सैन्य सेवा की, उनके पट्टे जारी होते रहे, राज्य ने कभी भी हस्तगत नहीं किये।

ख्यात अध्ययन से पता चलता है कि राठौड़ सरदारों को ठिकानों के अतिरिक्त गाँव पट्टे में अलग से दिए जाते थे। ये ठिकाने, ठिकानेदार को उनकी सराहनीय कार्य के लिए राज्य द्वारा दिये जाते थे। जिन सामन्तों को बंजर भूमि (निर्जन क्षेत्र) राज्य द्वारा इसलिए दी जाती थी, ताकि भविष्य में सामन्त वहाँ जनसंख्या बसा सके, सामन्त इसके लिए पड़ोसी परगनों व राज्यों से कृषकों को आमंत्रित करता था तथा वहाँ उन्हें बसाकर कई प्रकार के करो में छूट देता था। इस प्रकार के ठिकानों में सामन्त केवल राजा को एक निश्चित राशि देते थे, इस प्रकार पट्टेदार भी निश्चित राशि ही देते थे। राठौड़ अजबसिंह कूंपावत को सोजत परगने में ''अजबबारागुड़ा'' ठिकाने में दिया गया, जो अन्य राज्य के ठिकानेदार के पास था। अजबसिंह ने पट्टेदार के रूप में 40 रुपये वार्षिक रेख देना स्वीकार किया। राठौड़ हिम्मत सिंह राजावत को सांभर परगने में 'गुड्डों' ठिकाना दिया तो, उसने राज्य को 380 रुपये रेख की वार्षिक राशि देना निश्चित किया। इस प्रकार वार्षिक समेकित राशि ठिकानेदार राज्य को देते थे, उसे ''भुगत–भोग'' कहा जाता था।[87]इस प्रकार यह तो नियत है कि सामन्त को पट्टा देते समय रेख को निश्चित अवश्य किया जाता था। वह गाँव के संसाधनों पर निर्भर करता था। ठिकाना के अलावा भी राज्य, सामन्त को गाँव देते थे, जो उनके भोम का हिस्सा होते थे। मारवाड़ में भोमियों को राज्य की ओर से पट्टा नहीं मिलता था, बल्कि वे अपने बाहुबल से भूमि हस्तगत कर उसका विकास करते थे। जोधपुर की स्थापना से पूर्व रावल मल्लीनाथ के वंशज महेचा का महेवा क्षेत्र और जैतमाल के वंशज जैतमालोत के गुड़ा और नगर ठिकाने तथा सांचौर के चौहानों के ठिकाने चितलवाना, सूराचन्द आदि के ठिकानेदार राज्य को रेख नहीं देते थे, बल्कि वे ''फौजबल'' अथवा ''खिचड़ी लाग'' कर ही देते थे। इनसे हुक्मनामा भी नहीं लिया जाता था। राठौड़ रणमल के पुत्र हेमराज को 1710 ई. में मेड़ता परगने के तलेड़ा गाँव में 500 बीघा जमीन के रूप में मिली, वह केवल 37.44 रुपये (37/7 रुपये) 'भोम बाब' के रूप में देता था।[88] एक अन्य सामन्त को पाली परगने में लबड़ों गाँव में $1\frac{1}{3}$ बीघा जमीन, 9 रुपये वार्षिक कर के बदले 'भोम बाब' दी गई। एक अन्य सामन्त को 440 बीघा जमीन केवल 139.69 रुपये वार्षिक राशि के बदले 'भोम–बाब' जमीन दी गई। इस प्रकार उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि भोम–बाब के रूप में दी जाने वाली जमीनें स्पष्ट रूप से परिभाषित होती थी। इस कार्य के लिए स्थानीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा भोम–बाब की जमीन का सीमांकन व मूल्यांकन करते थे। पट्टेदार व भू–राजस्व अधिकारी जैसे पटवारी, कारकून, सामन्त के लिए स्वाभाविक रूप से चिन्तित रहते थे, कि उनके अधिकार सीमित ही रहे तथा वे अन्य क्षेत्रों पर

अधिकार या अतिक्रमण तो नहीं कर रहे। भोम जागीर की स्वीकृति राज्य द्वारा तभी दी जाती थी, जब भोमिया सामन्त राज्य को नियत राशि का भुगतान करे, जो भोम–बाब के रूप में जानी जाती थी। मारवाड़ राज्य में भोम–बाब राशि में अन्तर यह दर्शाता है कि, इसके लिए कोई परम्परागत रूप से नियत आदर्श का पैमाना स्थापित नहीं हो सका था। इसी प्रकार पट्टेदारी व्यवस्था में करों में भिन्नता थी। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी, वहाँ असिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा रेख ज्यादा लिया जाता था।[89] जिन निर्जन क्षेत्रों को भोमियों ने आबाद किया था, वहाँ भी कर की राशि काफी कम होती थी, कभी–कभी भोमिया को भोम–बाब से पूर्णतः मुक्त कर दिया जाता था, यह तभी संभव होता था जब भोमिया स्वयं के संसाधनों से निर्जन क्षेत्रों को आबाद किया हो। पश्चिमी राजपूताना का यह क्षेत्र 'भोमिचारा' कहलाता था। इनका अधिकार वंशानुगत ही रहा। जागीर हमेशा ज्येष्ठ पुत्र को हस्तान्तरित होती थी और कनिष्ठ भाइयों को जीविका के लिए कुछ क्षेत्र मिलता था, जबकि भोमिचारा (बपोती) सभी पुत्रों में समान रूप से विभाजित होता था।[90] भोम–बाब की राशि का निर्धारण भौगोलिक परिस्थितियों व आर्थिक संसाधनों पर निर्भर करता था, इस प्रकार सभी भोम–बाब भूमि को निश्चित रियायत प्राप्त थी। सावधानी से अध्ययन करने से पता चलता है कि ठिकाना व भोम के स्वरूप की स्वीकृति व अधिकार एक समान थे। इसी के समान रूप का अनुदान राज्य द्वारा दिया जाता था, जो विभिन्न करों से मुक्त था, वह ''मुण्डकटी'' कहलाता था। यह राज्य की विशेष सेवा के फलस्वरूप ईनाम के रूप में प्रदान किया जाता था, ये भी एक प्रकार की माफी भूमि थी।

उपर्युक्त भूमियों पर वंशानुगत अधिकार होते थे और राज्य उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता था, जब तक राज्य उनसे संतुष्ट रहता था।[91] ठिकानेदार व भोम बाब दोनों अपने क्षेत्रों में डकैती व अन्य जुर्म को रोकने का कार्य तथा यात्रियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी निभाते थे। संगीन डकैती पड़ने पर फौजदार और कभी–कभी ठाकुर स्वयं सवारों के साथ डाकुओं के विरूद्ध अभियान में जाते थे। जोधपुर राज्य में इसे ''बाहर चढ़ना'' कहते थे। सामन्तों को ''भूमि–चारा–रा–गाँव'' भी दिये जाते थे, इस प्रकार के गाँवों की स्थापना राठौड़ सरदारों या राजकुमारों द्वारा की गई थी। कालान्तर में उनके उत्तराधिकारियों ने इन गाँवों को संभाला, ''भूमि–चारा'' गाँवों को बसाने का कार्य राठौड़ों के मारवाड़ में आगमन के बाद हुआ।[92] इस प्रकार के राजपूत बाद में 'सीरिवी' या 'सिरवी' राजपूत कहलाये। सोजत, जैतारण, सांचौर परगनों के अभिलेखों व नैणसी की ख्यात में ''भूमि चारा'' गाँवों का उल्लेख मिलता है, जिनमें जनसंख्या की बसावट राजपूतों द्वारा की गई। इन गाँवों की 'हासिल रकम' ही पट्टेदार द्वारा चुकाई जाती थी।[93] सोजत परगने के लाडपुरा गाँव के सिरवी राजपूत, बगड़ी के पट्टेदार को केवल 60 रुपये वार्षिक कर चुकाता था। जगमाल मालावत के पौत्र को 30 गाँव, 'भूमि–चारा' के रूप में दिये गये (पोकरण)।[94] पोकरण के राठौड़, जो भोमिया कहलाते थे, उन्होंने कभी भी राज्य की सैनिक सेवा नहीं की, न विशेष लगान या कर दिया व पेशकशी, नजराना भी (नलबंधी, सैन्यकर) नहीं दिया। राज्य द्वारा उपकार करने का कारण यह था कि इस प्रकार के गाँवों में शासन करने वाले भोमिया, राठौड़ कुल से संबंधित थे। ये क्षेत्र या गाँव 'जोर तलब' कहलाते थे। इन गाँवों के अध्ययन से पता चलता है कि भोमिया परिवार के लोग स्वयं कृषि (खुद–काश्तकार) करते थे। इन भोमियों के पूर्वज ही प्रथम उपनिवेशवादी थे, इसलिए यहाँ से कृषकों से भू–राजस्व प्राप्त करने तथा अकृष्य भूमि को आवंटन करने का अधिकार भी इन्हीं के पास था। इसी प्रकार के विशेषाधिकार का उपभोग भील, मेर व मीणाओं द्वारा भी किया जाता था, वो भी भोमिया थे। सोजत परगने में 19 गाँव मेरो को भोम जागीर के रूप में आवंटित किये गये। ये वे लोग थे जो राठौड़ों के आगमन के उपरान्त क्षेत्राधिकार के लिए राठौड़ों से निरन्तर युद्धों में हारकर, उनकी पराधिनता स्वीकार कर ली। इन पराजित स्थानीय जातियों को वहाँ बनाये रखने के लिए जोधपुर राजा द्वारा उन्हें 'भोम जागीर' प्रदान की गई और उन्हें वही अधिकार प्रदान किये जो उनके पूर्वज उपभोग कर रहे थे। ''भोमी–चारा'' गाँव, भोम जमीन से बिल्कुल अलग था। राजा भूतपूर्व वंशजों को पहचान कर उन्हें भोम अधिकार देता था। इसमें राजा केवल उन्हें निश्चित क्षेत्रफल का गाँव ही भोम में देता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि ठिकाना व भोम के अधिकार एक समान निहित थे, जैसे दोनों में वंशानुगत पद्धति थी। दोनों में सामन्त, राज्य को एकमुश्त राशि देते थे, लेकिन दोनों में कुछ भिन्नता भी निहित थी, जैसे ठिकानेदार को अपने कृषि क्षेत्र को विस्तार करने का अधिकार मिला हुआ था, इससे कृषि योग्य भूमि जो ठिकानों के अधीन थी उसका विस्तार हुआ, दूसरी तरफ भोम जागीर में कृषि योग्य भूमि को विस्तारित करने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार की रीति में ठिकाना व भोम में किसी भी प्रकार से नये सामन्त का उद्भव या उत्पत्ति नहीं हो सकती थी। इस व्यवस्था में नये जागीरदार द्वारा पुराने ठिकानेदारों को प्रतिस्थापन नहीं किया जाता था, बल्कि इन ठिकानों के सदस्यों द्वारा स्वयं द्वारा निजी रूचि राजा के प्रति दिखाई जाती थी। यह अनुमान लगाना भी गलत है कि पुराने वंशानुगत ठिकानेदारों ने पट्टेदारी व्यवस्था में अपने पुराने पद–प्रतिष्ठा, सैनिक दायित्वों को खो दिये थे। एक अध्ययन के मुताबिक पुराने सरदारों जैसे कुंपावत, जोधावत, चांपावत व मेड़तिया आदि राठौड़ हमेशा जोधपुर राजनीति व सैन्य व्यवस्था के मुख्यधारा में रहे व प्रशासन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करते रहे। यह निरीक्षण किया गया कि भोम या ठिकाना में सामान्यतः गाँव, गाँवों व पट्टों को शामिल किया जाता था। गाँवों में जहाँ किसानों के कुल, वंश, परिवार एक समान थे उन्हें भोम अधिकार भी एक समान दिये गये। वे 'खुद–काश्त' अधिकारों का प्रयोग करते थे। वे क्षेत्र जहाँ किसान कृषि में व्यस्त था, वहाँ भोमिया सरदार मुश्किल से हस्तक्षेप करते थे। उसे केवल अपने हिस्से (हासिल) लेने से मतलब होता था। इस प्रकार की परिस्थितियों में जमीन पर मालिकाना हक भोमिया व किसान के मध्य परस्पर मिले हुये थे। इस प्रकारके कहीं भी उद्धरण नहीं मिलते की भोमिया ने किसी किसान से भूमि हस्तगत किया हो। भोमिया के पास विशाल बंजर भूमि थी, जिस पर खेती

नहीं हो रही हो तो वहाँ नये किसानों को भूमि आवंटित करने का अधिकार भोमिया को कभी भी नहीं मिला। इस प्रकार के अधिकार हमेशा जोधपुर राजा के पास ही सुरक्षित रहे। कोई सामन्त युद्ध क्षेत्र में लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है, तो उनके परिवार को जीवन निर्वाह के लिए पट्टा मिलता था, जिसका नाम ''जीविका'' पट्टा था। इस प्रकार के अनुदान में न तो कोई सामन्ती सेवा होती थी और न ही कोई कर देते थे, ये सभी प्रकार के करों से मुक्त होता था। उसके पट्टों में बढ़ोतरी केवल राजा द्वारा उसकी सेवाओं को देखकर ही की जाती थी। इस प्रकार के पट्टे रानियों व राजा के संबंधी (राजवी) को भी दी जाती थी।[95] कुछ ख्यातों में इस बात का संकेत मिलता है कि जब पट्टा किसी अन्य शाखा अथवा अन्य जाति के व्यक्ति को दिया जाता था तो सर्वप्रथम उसको 'अमल री चिट्ठी' (अधिकार करने का पत्र) दी जाती थी। अमल की चिट्ठी गाँव के चौधरियों को भी दी जाती थी, ताकि वे नए पट्टेदार की सहायता कर सकें।[96] जागीरदार का उत्तराधिकारी यदि अल्प आयु का होता था तब भी उसे 'अमल री चिट्ठी' भेजी जाती थी।[97] अमल री चिट्ठी एक अस्थाई पत्र होता था, जिसे उसी दिन निरस्त भी किया जा सकता था।[98] इस प्रकार नए पट्टेदार को पट्टा देने के पश्चात् 'अमल री चिट्ठी' दी जाती थी। उसके उत्तराधिकारी को पट्टा मिलने पर राजस्व वसूली की स्वीकृति हेतु 'सनद' पत्र भेजा जाता था।

महाराजा शूरसिंह के शासनकाल में राज्य की शासन प्रणाली पूर्णतया मुगल शासन–व्यवस्था पर आधारित हो गई। उसका मंत्री भाटी गोविन्ददास शासन प्रबंध एवं व्यवस्था में अत्यन्त पटु था और उसने मुगल शासन व्यवस्था का अध्ययन कर राज्य की सैन्य व्यवस्था व शासन प्रणाली को फिर से सुव्यवस्थित किया। इस नई व्यवस्था में राजा को राज्य के अन्य जागीरदार एवं सामन्तों से ऊँचा सिद्ध करने की कोशिश की गई। अन्य राजपूत राजाओं के सदृश्य शूरसिंह ने भी अपने सामन्तों के साथ उसी तरह का व्यवहार रखना चाहा, जैसा मुगल शासक इन राजाओं के साथ स्वयं रखता था। मुगल मनसबदारी व्यवस्था का महाराजा शूरसिंह के समय में ही सैन्य व्यवस्था में अनुकरण व अनुशरण किया जाने लगा तथा राजा जसवंत सिंह के शासनकाल में पट्टेदारी व्यवस्था, मनसबदारी व्यवस्था से पूर्णतः प्रभावित हो चुकी थी। राजा जसवंत सिंह के शासनकाल में जोधपुर राज्य की शासन प्रणाली पूरी तरह मुगल शासन व्यवस्था पर आधारित हो गई थी। महाराजा शूर सिंह के समय सामन्तों का कुछ स्पष्ट वर्गीकरण देखने को मिलता है। गोविन्ददास ने राजा के पूर्वजों के वंश के लोगों को उमराव (सामन्त) बनाया और उनके कुरब (सम्मान) निश्चित किए। महाराजा विजयसिंह (1753–1793 ई.) के समय में परिस्थितियों में परिवर्तन आया। अब सामन्तीय प्रभाव बढ़ने लगा था और मुगलों के पतन के फलस्वरूप मराठा आक्रमण का भय बना रहता था, अतः उसने स्वयं की सेना गठित की थी। महाराजा विजय सिंह का प्रमुख सामन्त देवीसिंह चांपावत (पोकरण) तो अभिमान के साथ कहता था कि मारवाड़ का शासन 'उसकी कटारी की पड़तली' में रहता है।[99] वि.सं. 1813 (1757 ई.) में मारवाड़ में अकाल पड़ा और दूसरी ओर मराठा खानाजी जाधव मारवाड़ राज्य में उपद्रव कर रहा था, परन्तु महाराजा विजयसिंह अपने सामन्तों के असहयोग के कारण कुछ भी करने में असमर्थ था। अतः महाराजा विजयसिंह ने अपने धायभाई जगन्नाथ के सहयोग से एक वैतनिक सेना का निर्माण किया।[100] इस प्रकार मराठा व पिंडारी आक्रमण के भय के कारण एक फौज का निर्माण हुआ, जिसकी संख्या 12000 थी, जिसमें से 4000 जागीर सैनिक थे, जो युद्ध के समय ही बुलाए जाते थे और अन्य वेतनभोगी सैनिक थे। इनमें मुख्यतः घुड़सवार और बंदुकची होते थे।[101] इस प्रकार जोधपुर राज्य में सैन्य पद्धति का सूत्रपात हुआ। इससे स्थानीय सामन्तों का महत्त्व घटने लगा, उन्होंने इस सेना का विरोध किया किन्तु महाराजा विजयसिंह ने ठाकुर देवीसिंह पोकरण, केसरीसिंह रास, छत्रसिंह आसोप आदि को अवसर पाकर इन्हीं वेतनभोगी सैनिकों की सहायता से दुर्ग में बंदी बना लिया। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शासक की अपने सामन्तों पर सैनिक निर्भरता समाप्त हो गई थी। इस स्थायी सेना के अतिरिक्त प्रत्येक सामन्त को भी सेना रखनी पड़ती थी, जो युद्ध में काम आती थी। किसी बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक विद्रोह को दबाने हेतु राजा अपने स्वामिभक्त सामन्तों को ''परवाना'' भेजा करता था। पहले राजकीय सेवा में सामन्तों की सेना का पृथक अस्तित्व होता था। अपनी सेना का नेतृत्त्व स्वयं जागीरदार करता था, लेकिन केन्द्रीय सेना में सामंजस्य बनाने के लिए सामन्तों को बख्शी के निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता था।[102] जैसे मेड़ता पर आक्रमण के समय (1790 ई.) महादजी सिंधिया के सेनापति डी बॉय का तोपखाना लूनी नदी में फंस गया था, तब मारवाड़ के सामन्तों महेशदास कूंपावत (आसोप), शिवसिंह चांपावत (आऊवा) आदि ने बख्शी भीमराज सिंघवी से तत्काल आक्रमण करने को कहा था, परन्तु भीमराज ने सलाह नहीं मानी। अतः सामन्त चाहते हुए भी आक्रमण नहीं कर पाए, फलस्वरूप उन्हें परास्त होना पड़ा।

पैदल सैनिकों का कारकून दफ़्तर

राज्य की ओर से घुड़सवार और पैदल सैनिक पगरनों में भी नियुक्त किए जाते थे और राज्य के निर्देशानुसार ठिकानेदारों की सेना भी रखी जाती थी। परगनों के 'कारकून दफ़्तर' में ऐसे सैनिकों की उपस्थिति दर्ज की जाती थी और सैनिकों की पहचान के लिए पूर्ण विवरण 'चेहरा बहियों' में अंकित किया जाता था। लड़ाई में सैनिक के मारे जाने या घायल होने की स्थिति में उसकी पहचान करने में ये सूत्र उपयोगी सिद्ध होते थे, वहीं सवारी के घोड़े की पहचान भी कर ली जाती थी। जालोर कारकून दफ़्तर की चेहरा बहियों से इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते हैं[103]–

चेहरा बहियों से ज्ञात सैनिकों का विवरण

क्र. सं.	पहचान अंकित करने की दिनांक (वि.सं.)	सैनिक का नाम व गाँव	जाति	सैनिक की आयु	शस्त्र	घोड़े की पहचान	अश्व की आयु	घोड़े का मूल्य (रुपए)
1.	पोष वदी 4, 1838	रूपसिंह, कडतुसण	जैतावत	28	बंदूक	सुरंग (लाल) घोड़ा	–	100
2.	पोष वदी 4, 1838	काना	धांधल	24	बंदूक	घोड़ा कुमेत (स्याही लिए हुए लाल रंग), बांया पैर सफेद	6	80
3.	पोष वदी 6, 1838	रूपसिंह	सिसोदिया	30	बंदूक	घोड़ा पीला	4	40
4.	पोष वदी 9, 1838	सुखसिंह, साडियो	जैतावत	20	बरछी	सुरंग, दायां पैर सफेद	7	200
5.	आसाढ़ वदी 2, 1848	बखता	दहिया	50	बंदूक	पैदल	–	–
6.	1851	बीरम (गोदा का बास)	दहिया	42	बंदूक	पैदल	–	–
7.	1853	जुझारसिंह	जैतावत	30	बंदूक	घोड़ी कुमेत, पंच कल्याण	3	100
8.	श्रावण वदी 1, 1853	रामदास, उनडी	ऊहड़	48	बरछी	घोड़ी कुमेत, अगला बायां पैर और पिछला दायां पैर सफेद	8	160
9.	श्रावण वदी 5, 1853	बिशनसिंह, चैनपुरा	जैतावत	35	बंदूक	घोड़ी सुरंग, पंच कल्याण दायें पूठे पर कुंडली	6	100
10.	श्रावण वदी 6, 1847	मुकनदास, आसाणो	ऊहड़	30	बंदूक	घोड़ी नीली, पैर सफेद	7	350
11.	श्रावण वदी 1, 1856	बाघसिंह, थांवला	जैतावत	26	बंदूक	घोड़ी सुरंग	6	400

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश 25 से 40 वर्ष की उम्र के सैनिकों की नियुक्ति की जाती थी। शस्त्र के रूप में उनके पास बंदूक अथवा बरछी होती थी। स्वयं की बंदूक नहीं होने पर राज्य की ओर से उपलब्ध कराई जाती थी। सामान्यतः घोड़े 3 से 8 वर्ष की आयु तक होते थे, जिनका मूल्य 40 रुपये से 400 रुपये तक हो सकता था। सुरंग नस्ल के घोड़ों का मूल्य सबसे अधिक होता था। चेहरा बहियों में सैनिकों को कितना वेतन मिलता था इसका उल्लेख नहीं है। इस प्रकार का हिसाब रोजिनदारों की बहियों में रखा जाता था। राज्य की सुरक्षा के लिए युद्ध अभियानों में सेना की पूर्ति विभिन्न ठिकानों से की जाती थी, परन्तु राज्य के अन्दर ठिकानेदारों के विद्रोही होने की स्थिति में राज्य की ओर से सेना का गठन किया जाता था। वि.सं. 1826 (1768 ई.) में पाली परगने में राजकीय सेना रखी गई। उनके लिए प्रतिदिन का वेतन निश्चित करके दो माह के वेतन का भुगतान किया गया। कारखाना (सैनिक) की खाता बहियों से अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्र हमें ज्ञात होते हैं। निम्न सारणी से इसको समझा जा सकता है[104]–

क्र.सं.	रोजिनदार का नाम (सभी राठौड़)	पिता का नाम	दो माह का वेतन		
			रुपए	आना	पैसा
1.	शेरसिंह	हिम्मतसिंह	130	–	–
2.	मोहनसिंह	सरदारसिंह	82	14	–
3.	इन्द्रसिंह	कीरतसिंह	6	12	–
4.	हरभाण	साहबखान	42	5	–

5.	भगतसिंह	सरदारसिंह	50	1	—
6.	हरिसिंह	मोतीसिंह	35	8	—
7.	मानसिंह	जगतसिंह	32	4	—
8.	विजयसिंह	तेजमाल	74	1	—
9.	रामसिंह	कानसिंह	30	12	—
10.	भोपतसिंह	उम्मेदसिंह	113	2	2
11.	बुधसिंह	भगवतसिंह	115	4	—
12.	भावसिंह	शिवदान	14	4	—
13.	मोहनसिंह	गुमानसिंह	8	12	—
	कुल		**735**	**15**	**2**

इस प्रकार उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि रोजिनदारों के वेतन में बहुत अन्तर है। सूची से यह ज्ञात नहीं होता है कि वे सभी घुड़सवार थे अथवा पैदल सैनिक। राठौड़ शेरसिंह तो निश्चित ही घुड़सवार होगा, जैसे कि उसके वेतन से स्पष्ट है। यह जैतावत राठौड़ों के रोजिनदारों का मुखिया था, इसलिए इसका नाम शीर्ष स्थान पर अंकित किया गया है।

सैन्य व्यवस्था में सामन्तों का संयोजन

राठौड़ों की पट्टेदारी व्यवस्था का प्रसार इस बात का संकेत नहीं करती की जोधपुर राज्य में पट्टेदार केवल राठौड़ कुल के ही होते थे। महाराजा जसवंतसिंह के राज्यकाल में दिए गये पट्टे मुख्य रूप से राठौड़ कुल के परिवार को ही मिले, साथ में अन्य राजपूत कुलों के परिवारों को भी पर्याप्त पट्टे प्राप्त हुये। जो भी पट्टे दिये गये उनमें मुख्य राव जोधा के 14 पुत्रों व 23 भाइयों के वंशज थे। महाराजा जसवंतसिंह के काल में (1658–1662 ई. मध्य तक) जिन सरदारों के पास 1000 रुपए से ऊपर के पट्टे का स्वामित्व था, वे कुल सामन्तों 618 सरदारों में से 525 सरदार विभिन्न राठौड़ कुलों से संबंधित थे[105], 525 राठौड़ सरदारों में भी 80 जोधा वंश से, 76 मेड़तिया वंश से, 95 कूंपावत वंश से, 44 उदावत वंश से, 22 चांपावत वंश से तथा शेष 208 सरदार राठौड़ों के अन्य कुल से संबंधित थे। परगनों में सामन्तों व उप–सामन्तों को पट्टा देने की प्रथा का अध्ययन करने से पता चलता है कि जोधपुर राज्य में विशेष कुलों को पट्टा देने में प्राथमिकता दी गई जैसे जोधपुर परगने में कूंपावत, जैतारण में उदावत, सोजत परगने में जैतावत, फलोदी परगने में पट्टावत, मेड़ता परगने में मेड़तिया, पोकरण परगने में नरावत, सिवाना परगने में बालावत, जालोर परगने में जोधावत। उक्त कुलों के पास ही सबसे अधिक पट्टे होते थे।

जोधपुर राज्य के परगनों में प्रभावशाली कुलों/खांपों की स्थिति[106]

क्र.सं.	**गोत्र/कुल/खांप का नाम**	**पट्टों की संख्या**	**राजस्व आय (रुपये)**
1	**2**	**3**	**4**
जोधपुर परगना			
1.	कूंपावत	36	2,37,100
2.	चांपावत	27	—
3.	मेड़तिया	28	—
जैतारण परगना			
1.	ऊदावत	18	79,690
2.	जोधा	16	32,700
3.	कूंपावत	04	25,000
सोजत परगना			
1.	जैतावत	25	85,700
2.	चांपावत	14	80,200
3.	कूंपावत	21	71,000
फलोदी परगना			
1.	पातावत	10	15,000
2.	करमसोत	03	8,300
3.	रूपावत	02	6,300
मेड़ता परगना			
1.	मेड़तिया	40	2,40,300
2.	जोधा	40	1,73,000
3.	चांपावत	15	50,000
पोकरण परगना			
1.	नरावत	01	41,150

सिवाना परगना			
1.	बालावत	06	12,200
2.	जगमाल	05	7,000
3.	ऊदावत	01	6,000
जालोर परगना			
1.	जोधा	10	32,700
2.	ऊदावत	05	21,500
3.	मण्डावत	08	18,400

यह भी पता चलता है कि जोधपुर परगने में कूंपावत सरदारों के पास क्षेत्रफल में सबसे बड़ा पट्टा था, लेकिन अन्य परगनों में इनकी स्थिति एक समान नहीं होती थी। राठौड़ सरदार खाँप (शाखा या उप कुल) में विभाजित थे। खाँप वालों को बहुत बड़ा पट्टा जागीर, परगनों में नहीं दी जाती थी। दो परगनों में एक साथ एक ही खाँप का अधिकार नहीं था। इससे पता चलता है कि राज्य शक्ति संतुलन के सिद्धान्त से कार्य करता था। सरदारों को एक ही जगह परगनों, टप्पों, गाँवों में केन्द्रित होने का मौका नहीं दिया जाता था, इसीलिए 'दरो–बस्त–जागीर' वंशानुगत जागीरदारों को आवंटित नहीं की जाती थी। वे राठौड़ कुल के पट्टेदार जिनके पास 100 से 1000 रुपये रेख का पट्टा होता था, उनकी संख्या नगण्य होती थी। राठौड़ पट्टेदारों में कूंपावत व चांपावत राठौड़ सरदारों के पास पट्टेदारों का सबसे बड़ा समूह था, इन्हें हमेशा 1000 रुपये व उससे ऊपर की रेख वाले पट्टे दिये जाते थे। उसी प्रकार एक अन्य महत्त्वपूर्ण राठौड़ खाँप (उपकुल) मेड़तियों का था, जिनके पास 800 रुपये से कम का रेख का पट्टा नहीं होता था। इससे पता चलता है कि वंशानुगत राठौड़ परिवार प्रभावशाली होने से शासक वर्ग में हमेशा शामिल रहा। गैर राठौड़ सरदार जिन्होंने राठौड़ सामन्त वर्ग की संरचना में अपनी भूमिका निभाई उनमें पंवार, सौलंकी, चौहान, परिहार, कच्छवाहा, गहलोत, तंवर, भाटी थे, जो विभिन्न राजपूत कुलों से संबंधित थे। पट्टा पद्धति का अध्ययन करने से पता चलता है कि 1000 रुपये का पट्टा, गैर राठौड़ कुल के सामन्तों को प्राप्त कुल पट्टे का 15 प्रतिशत ही मिला था। इन 15 प्रतिशत पट्टों में 25 भाटी वंश, 21 चौहान वंश, 18 कच्छवाहा वंश के राजपूत थे, जिनके पास सबसे अधिक पट्टे थे। इसके बाद शेष रह गये वे राजपूत थे – 8 गहलोत, 7 परिहार, 3 मुहता, 3 मुसलमान, 2 गोर, 2 तंवर, 2 पंवार व 01 सोलंकी थे। यह संख्या राठौड़ सरदारों की तुलना में नगण्य थी। गैर राठौड़ सरदारों में सबसे ऊँचा स्थान भाटी राजपूत कुल का था। भाटी व कच्छवाहा सरदारों को कभी भी राज्य द्वारा 1000 रुपये से नीचे का पट्टा नहीं दिया गया।[107] इस प्रकार जिन सरदारों के पास 1000 रुपये से ऊपर के पट्टे थे, वे सरदार हमेशा अपने से निम्न राजपूत सरदारों पर श्रेष्ठता सिद्ध करते रहते थे। कुल जारी किए गये पट्टों में से गैर राठौड़ सरदारों को दिये गये पट्टे की राशि बहुत कम होती थी। इस प्रकार राठौड़ सरदारों को ही उच्चतम राजस्व, चाकरी का पट्टा व गैर चाकरी का पट्टा दोनों प्राप्त होते थे। विशेष खाँप के सदस्यों को पट्टा, गाँवों व ठिकानों में प्रदान किया जाता था।[108]

रेख के आधार पर घुड़सवार अथवा शुतुर सवार आदि के निर्धारण के संबंध में कोई एक निश्चित नियम नहीं था, उदाहरणार्थ 40,200 रेख पर 50 घुड़सवार, 5000 रेख पर 9 घुड़सवार, 1400 रेख पर 2 घुड़सवार, 600 रेख पर 1 घुड़सवार, 300 रेख पर 1 घुड़सवार, 700 रेख पर 5 शुतुर सवार रखने का उल्लेख मिलते है।[109] अतः यही कहा जा सकता है कि पट्टा देते समय ही सवारों की संख्या का निर्धारण शासक की ईच्छानुसार कर दिया जाता था।

निष्कर्ष

राव जोधा द्वारा स्थापित भाई–बंट की जागीर व्यवस्था ही, जोधपुर राज्य की सैन्य व्यवस्था का आधारभूत स्तंभ थी। जोधपुर राज्य के सैन्य संगठन का आधार राज्य के छोटे–बड़े सभी जागीरदार (पट्टेदार) होते थे। प्रत्येक जागीरदार जागीर के बदले में निश्चित संख्या में सैनिक रखते थे और आवश्यकता पड़ने पर राज्य की सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। जागीर के अनुसार ही जागीरदारों को घुड़सवार व शुतुर सवार रखने होते थे। प्रायः जागीर का वितरण शासक अपने ही वंश के लोगों में करता था। इसके साथ ही उनके साथ वैवाहिक संबंधों अथवा अन्य कारणों से भी गैर राठौड़ वंशीय राजपूतों को भी जागीरें (पट्टा) प्रदान की जाती थी। सामान्यतः राजा सामन्तों को जागीरे देने में वंशानुगत परम्परा को निभाता था। पट्टा प्रदान करते समय प्रत्येक सामन्त के पट्टे में सामन्त को सैनिक अथवा असैनिक किस प्रकार की सेवा करनी होगी, उल्लेख होता था। सैनिक सेवा ही महत्त्वपूर्ण थी। मुगलकाल में राठौड़ राजा मोटाराजा उदयसिंह, मुगल मनसबदार हो गये थे। अतः जोधपुर राजाओं को मुगल बादशाह की सेवा में रहकर उनके आदेशानुसार विभिन्न युद्धाभियानों में जाना पड़ता था। सामन्त ही शासक की सैनिक शक्ति के मेरूदण्ड थे। सामन्त राज्य की रीढ़ की हड्डी थे। राज्य की सुरक्ष का दायित्व सामन्तों पर रहता था। सीमाओं की सुरक्षा और शासक की अनुपस्थिति में राजधानी व गढ़ की देखभाल व सुरक्षा का कार्यभार के लिए सामन्तों की नियुक्ति की जाती थी। अतः उन्हें भी राठौड़ शासक के साथ रहकर यत्र–तत्र जाना पड़ता था। मुगल मनसब प्राप्त राठौड़ राजा के उत्तराधिकारी का अंतिम निर्णय मुगल बादशाह स्वयं करता था। अतः मुगल आधिपत्य स्थापना के बाद इस संदर्भ में भी सामन्तों का महत्त्व और शक्ति बहुत कम हो गयी थी। जोधपुर राज्य के प्रत्येक परगने में भी राज्य की ओर से निश्चित सेना रखी जाती थी। उक्त सेना का मूल कार्य परगनों में शांति व व्यवस्था बनाये रखना था, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर सैनिक अभियानों में भी उक्त

सेना का उपयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त शासक के सीधे नियंत्रण में राज्य की अपनी अलग सेना भी रहती थी। यह सेना जोधपुर में ही रहती थी। राज्य की इस सेना में घुड़सवार, हस्तिसेना, शुतुर सवार अर्थात् ओठी, तोपची व पैदल सेना होती थी। सैन्य व्यवस्था का सम्पूर्ण दायित्व बख्शी का होता था। केन्द्रीय स्थाई सेना को नगद भुगतान किया जाता था। मुगल प्रभाव से जोधपुर की सैन्य व्यवस्था पट्टेदारी पर आधारित थी, जिसका आधार 'रेख' को बनाया गया था। जोधपुर राज्य की प्रारंभ में सामन्तीय व्यवस्था कालान्तर में पट्टेदारी व्यवस्था ही सैनिक शक्ति व व्यवस्था का मुख्य आधार स्तंभ बन गयी। जोधपुर राज्य द्वारा सैनिक दृष्टिकोण से सामन्तों पर अत्यधिक निर्भर ताने भी कालान्तरण में जाकर राज्य को नुकसान हुआ, सामन्तों पर नियंत्रण रखने के लिए राजा के पास स्थायी सेना के अभाव में हमेशा राज्य के आंतरिक व बाह्य मामलों व उत्तराधिकारी जैसे निर्णय भी सामन्तों की सलाह व सहमति से सम्पन्न होने लगे। राठौड़ों की भाई–बंट सैनिक पद्धति ने प्रारम्भ में साम्राज्य विस्तार में संजीवनी का कार्य किया, सभी सामन्त स्वयं को राज्यहित के लिए बलिदान देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे, लेकिन मुगल प्रभाव से सैन्य व्यवस्था को रूपान्तरित कर पट्टेदारी में बदल दिया, तब सामन्त की निष्ठा राज्य के प्रति कम हो गई और वे लगातार नवीन पट्टा प्राप्त करने में लगे रहे। उस अनुपात में सेना में नवीकरण नहीं किया तथा पट्टे की शर्तों के अनुसार किसी भी पट्टेदारों ने सैन्य व्यवस्था का समुचित प्रबंध नहीं किया जो कालान्तर में जाकर मराठा आक्रमण के समय घातक सिद्ध हुआ।

1000 रुपये व उससे अधिक रेख प्राप्त राठौड़ सरदारों का विवरण[110]
(महाराजा जसवंतसिंह : 1658–1662 ई.)

क्र.सं.	पट्टेदार	पट्टों की संख्या	मारवाड़ में प्राप्त रेख	मारवाड़ राज्य से बाहर प्राप्त रेख	कुल रुपये
1.	फीतक	1	300	—	300
2.	बीदावत	2	2000	—	2000
3.	पातावत	22	42400	—	42400
4.	रूपावत	8	17500	—	17500
5.	जगमाल	20	39300	4500	43800
6.	बालावत	21	45220	1000	46220
7.	मंडावत	16	44900	2000	46900
8.	ऊहड़	06	31600	—	31600
9.	डूंगरोत	03	7500	—	7500
10.	बीहोत	04	5800	—	5800
11.	चूण्डावत	01	1000	—	1000
12.	पुरबीया राठौड़	05	11000	3000	14000
13.	सिंधल	03	4200	—	4200
14.	बैठवासिया राठौड़	01	1200	—	1200
15.	सन्दा रैमलोत	01	1500	—	1500
16.	देराजोत	02	8000	—	8000
17.	चावड़ा राठौड़	01	1900	—	1900
18.	गंगवाडिया	03	4150	—	4150
19.	महेचा	07	99900	—	99900
20.	चांपावत	22	400300	97300	497600
21.	मेड़तिया	76	366800	84200	451000
22.	कूंपावत	75	286650	151650	438300
23.	जोधा	80	405800	228400	634200
24.	जैतावत	28	140100	36000	176100
25.	ऊदावत	44	156090	162300	318390
26.	करमसीयोत	30	90300	10900	111200
27.	रायपाल जोधावत	01	1100	—	1100
28.	नारावत	03	49150	—	49150
29.	बीकावत	01	—	8000	8000
30.	खंगारोत	01	—	10000	10000
31.	खंगोर जोधावत	02	7000	7000	14000
32.	सूजावत	02	2800	—	2800
33.	करनोत	08	31500	11500	43000

34.	भोजराजोत	03	17000	5000	22000
35.	मदनावत	01	4000	—	4000
36.	भारमालोत	04	56000	13000	69000
37.	अखेराजोत	14	33700	8500	42000
38.	टाँक	02	2000	—	2000
39.	व्यास	01	5000	—	5000
	कुल	**525**	**2424660**	**844250**	**3268910**

1000 रुपये व उससे अधिक रेख प्राप्त गैर राठौड़ सरदारों का विवरण[111]
(महाराजा जसवंतसिंह : 1658–1662 ई.)

क्र.सं.	पट्टेदार	पट्टों की संख्या	मारवाड़ राज्य में प्राप्त रेख (रुपये)	मारवाड़ राज्य से बाहर प्राप्त रेख (रुपये)	कुल रुपये
1.	मुंहतो	03	5000	—	5000
2.	पंवार	02	1800	—	1800
3.	सोलंकी	01	2700	1000	3700
4.	चौहान	21	64100	31700	95800
5.	कछवाहा	18	28950	124600	153550
6.	परिहार	07	12200	—	12200
7.	गहलोत	09	14700	—	14700
8.	तँवर	02	—	16000	16000
9.	गोर	02	12000	7000	19000
10.	मुस्लमान	03	6500	—	6500
11.	भाटी	25	128407	8500	136907
	कुल	**93**	**276357**	**188800**	**465157**

कुल राठौड़ पट्टेदारों की संख्या – 525
कुल गैर राठौड़ पट्टेदारों की संख्या – 093
कुल – 618

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *व्यास, आर.पी., चन्द्रसेन के परिवेश में मारवाड़ की सामन्त व्यवस्था (शोध निबन्ध), पृ.59.*
2. *भाटी, हुकमसिंह, परम्परा, भाग 122–123, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 2000.*
3. *रघुवीर सिंह, राणावत मनोहर सिंह (सं.), जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ.53.*
4. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.38–39, ग्रन्थांक–101.*
5. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.39–40.*
6. *मित्र, मीरा, महाराजा अजीतसिंह एवं उनका युग, पृ. 263.*
7. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–द्वितीय, पृ.465–469.*
8. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–द्वितीय, पृ.469–471.*
9. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–द्वितीय, पृ.482–483.*
10. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.39–40.*
11. *भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ री ख्यात, भाग–प्रथम, पृ.39.*
12. *भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ां री ख्यात, भाग–प्रथम, पृ.54.*
13. *भाटी, विक्रमसिंह (सं.), मूंदियाड़ री ख्यात, पृ.22–23.*
14. *भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ा री ख्यात, पृ.68.*
15. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, ग्रन्थांक–101, भाग–प्रथम, पृ.40.*
16. *मुंशी हरदयालसिंह, तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़, पृ.2.*
17. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.47–48.*
18. *व्यास, आर.पी., रोल ऑफ नॉबिलिटि इन मारवाड़, पृ. 6.*
19. *व्यास, आर.पी., चन्द्रसेन के परिवेश में मारवाड़ की सामन्ती व्यवस्था (शोध निबन्ध), पृ.61.*
20. *भाटी, विक्रमसिंह (सं.), मूंदियाड़ री ख्यात, पृ.59–76.*
21. *उपाध्याय, मनोरमा, मारवाड़ रा परगनां री फरसत, पृ. 51.*
22. *भाटी, हुकमसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री फरसत, पृ.146.*
23. *गुप्ता, मोहनलाल, जालोर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ.195–196.*
24. *गुप्ता, मोहनलाल, जालोर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ.195–196.*
25. *साकरिया, बदरीप्रसाद (सं.), मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग–द्वितीय, ग्रन्थांक–49, पृ.149.*
26. *भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.41.*

27. साकरिया, बदरीप्रसाद (सं.), मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग–प्रथम, पृ.146.
28. रस्तोगी, साधना, मारवाड़ का शौर्य युग, पृ.99–100.
29. व्यास, माँगी लाल, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ.225.
30. भाटी, विक्रम सिंह (सं.), मूंदियाड़ री ख्यात, पृ.15–17.
31. भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.39.
32. साकरिया, बदरी प्रसाद (सं.), मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग–प्रथम, पृ.102–104.
33. साकरिया, बदरी प्रसाद (सं.), मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग–द्वितीय, पृ.117, 120, 110–111, 121, 124.
34. रस्तोगी, साधना, मारवाड़ का शौर्य युग, पृ.160–161.
35. रेउ, विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास, भाग–प्रथम, पृ.130.
36. रस्तोगी, साधना, मारवाड़ का शौर्य युग, पृ.161.
37. भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ों री ख्यात, भाग–प्रथम, पृ.81.
38. रेउ, विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास, भाग–प्रथम, पृ.146.
39. व्यास, आर.पी., चन्द्रसेन के परिवेश में मारवाड़ की सामन्ती व्यवस्था, परम्परा (शोध निबंध), भाग 122–123, पृ.62.
40. सिंह, रघुवीर, राणावत, मनोहर सिंह, जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ.105.
41. भाटी, हुकमसिंह, राजस्थान के मेड़तिया राठौड़, पृ. 94–95.
42. भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ां री ख्यात, भाग–प्रथम, पृ.121.
43. मुंशी, हरदयालसिंह, मजमूए–हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़, पृ.440.
44. बारहठ, शिवदत्तदान, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 205.
45. रेउ, विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ राज्य का इतिहास, भाग–द्वितीय, पृ.627.
46. व्यास, आर.पी., रोल ऑफ नॉबिलिटी इन मारवाड़, पृ. 187.
47. बारहठ, शिवदत्तदान, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 205–206.
48. शर्मा, जी.डी., राजपूत पॉलिटी, पृ.184.
49. हबीब, इरफान, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया (1556–1707), पृ.257.
50. सतीशचन्द्र, रघुवीर सिंह व शर्मा, घनश्याम दत्त (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.127.
51. हुकूमत बही व पट्टा बही, बस्ता संख्या 97, जोधपुर रिकॉर्डस्, रा.रा.अ. बीकानेर।
52. बीलाड़ा के ऐतिहासिक पत्र, बस्ता संख्या 1–9, रा.रा. अ. बीकानेर।
53. सिंह, मनोहर, जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ.84.
54. भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.408–410.
55. हुकूमत बही, बस्ता संख्या 152 बी, जोधपुर रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ. बीकानेर।
56. मारवाड़ रा पीढिया री ख्यात, पृ.85.
57. हुकूमत बही, बस्ता संख्या 107ब, रा.रा.अ. बीकानेर।
58. हुकूमत बही, बस्ता संख्या 109ब, 1670 ई., रा.रा.अ. बीकानेर।
59. बस्ता संख्या 101/14, रा.रा.अ. बीकानेर।
''सो चाकरी भली भात करसी,
मेलसी जठे जसी उजर करण पावे नहीं।''
पट्टा देते समय उक्त उद्धरण पट्टे में लिखे जाते थे।
60. बस्ता संख्या 76, फाईल नं. 2, जोधपुर रिकॉर्ड्स,रा.रा. अ. बीकानेर।
61. हुकूमत बही, बस्ता संख्या 126अ, रा.रा.अ. बीकानेर।
62. बस्ता संख्या 7, फाईल नं. 2, जोधपुर रिकॉर्ड्स, रा.रा. अ. बीकानेर।
63. हुकूमत बही, बस्ता संख्या 145अ, रा.रा.अ. बीकानेर।
64. भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग–द्वितीय, पृ.399.
65. खांपवार पट्टा बही, पट्टा संख्या 61–62, जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
66. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.191.
67. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.140.
68. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.194.
69. महाराजा अजीतसिंह पट्टा बही सं. 612, रा.रा.अ. बीकानेर।
70. (1) सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी. डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.125.
(2) सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.169.
71. भाटी, नारायणसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.38.
72. रघुवीरसिंह (सं.), उदयभाण चांपावत री ख्यात, भाग–द्वितीय, पृ.17–23, 31–36.
73. खांपवार पट्टा बही, पट्टा संख्या 53, रा.रा.अ. बीकानेर।
74. सनद बही 286, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ.372.
75. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.126.
76. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.139.
77. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.155, 158.
78. खांपवार पट्टा बही, पट्टा संख्या 78, जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
79. खांपवार पट्टा बही, पट्टा संख्या 78, रा.रा.अ. बीकानेर।
80. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.161.
81. भाटी, हुकमसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री फरसत, पृ.5.
82. सतीशचन्द्र, राणावत मनोहर सिंह व शर्मा, जी.डी. (सं.), जोधपुर हुकूमत री बही, पृ.138.

83. भाटी, हुकमसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री फरसत, पृ.3.
84. लाग–बाग, फाईल नं. 202, जोधपुर प्रशासन, बस्ता संख्या 97/4, जोधपुर रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ. बीकानेर।
85. बदरीप्रसाद साकरिया (सं.), मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग–द्वितीय, पृ.157.
86. बदरीप्रसाद साकरिया (सं.), मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग–द्वितीय, पृ.154–157.
87. बस्ता संख्या 97, फाईल नं. 4, रा.रा.अ. बीकानेर।
88. बस्ता नं. 97/4, लाग–बाग, फाईल संख्या 202–4, जोधपुर रिकार्ड्स, रा.रा.अ. बीकानेर।
89. बस्ता नं. 76/4, जोधपुर रिकॉर्डस्, रा.रा.अ. बीकानेर।
90. लाग–बाग, फाईल नं. 202, जोधपुर रिकॉर्डस्, रा.रा. अ. बीकानेर।
91. भाटी, विक्रमसिंह, मध्यकालीन राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था, पृ.134.
92. (1) लाग–बाग, फाईल संख्या 202, जोधपुर रिकॉर्ड्स, रा.रा.अ. बीकानेर।
(2) बडेन, पावेल, लैण्ड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया, पृ. 329–330.
93. भाटी, नारायण सिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–द्वितीय, पृ.347.
94. भाटी, नारायण सिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–प्रथम, पृ.461.
95. भाटी, नारायण सिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग–द्वितीय, पृ.340.
96. हथबही नं. 5, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ.39.
97. भाटी, हुकमसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री फरसत, पृ.7.
98. पट्टा बही नं. 8, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ.10.
99. भाटी, हुकमसिंह (सं.), मारवाड़ रा परगनां री फरसत, पृ.7.
100. भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ां री ख्यात, भाग–तृतीय, पृ.554.
101. भाटी, हुकमसिंह (सं.), राठौड़ां री ख्यात, भाग–तृतीय, पृ.542, 546–447.
102. सनद परवाना बही नं. 7, रा.रा.अ. बीकानेर, पृ.128.
103. बारहठ, शिवदत्तदान, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 219.
104. (1) जालोर कारकून दफ़्तर, चेहरा बही, वि.सं. 1856–1857, रा.रा.अ. बीकानेर।
(2) फौज ताल के चेहरा बही, वि.सं. 1838, 1848, रा.रा.अ. बीकानेर।
105. कारखाना रो खातो, वि.सं. 1825, जालोर बहियात, फौज पाली राखी तिण नांवो मास दो रो हस्ते सिंघवी धनरूपमल नै पंचोली सीरीदत्त : आसाढ़ सुदी 15, बही क्रमांक 80, जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
106. रिपोर्टस् ऑन जोधपुर कॉन्स्टीट्यूशनल रिफॉर्मस् (1944), लाग–बाग एन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट 1883, पृ. 95–96.
107. शर्मा, जी.डी., राजपूत पॉलिटी, पृ.147–148.
108. शर्मा, जी.डी., राजपूत पॉलिटी, पृ.130.
109. लाग–बाग, एन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट, 1883, परिशिष्ट सं. 2.
110. रिपोर्टस् ऑन जोधपुर कॉन्स्टीट्यूशनल रिफॉर्मस् (1944), लाग–बाग एन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट 1883, पृ. 95–96.
111. रिपोर्टस् ऑन जोधपुर कॉन्स्टीट्यूशनल रिफॉर्मस् (1944), लाग–बाग एन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट 1883, पृ. 95–96.